कुरुक्षेत्र

जून 1998

मूल्य : पांच रुपये

गाँवों में प्रदूषण : समस्या और समाधान

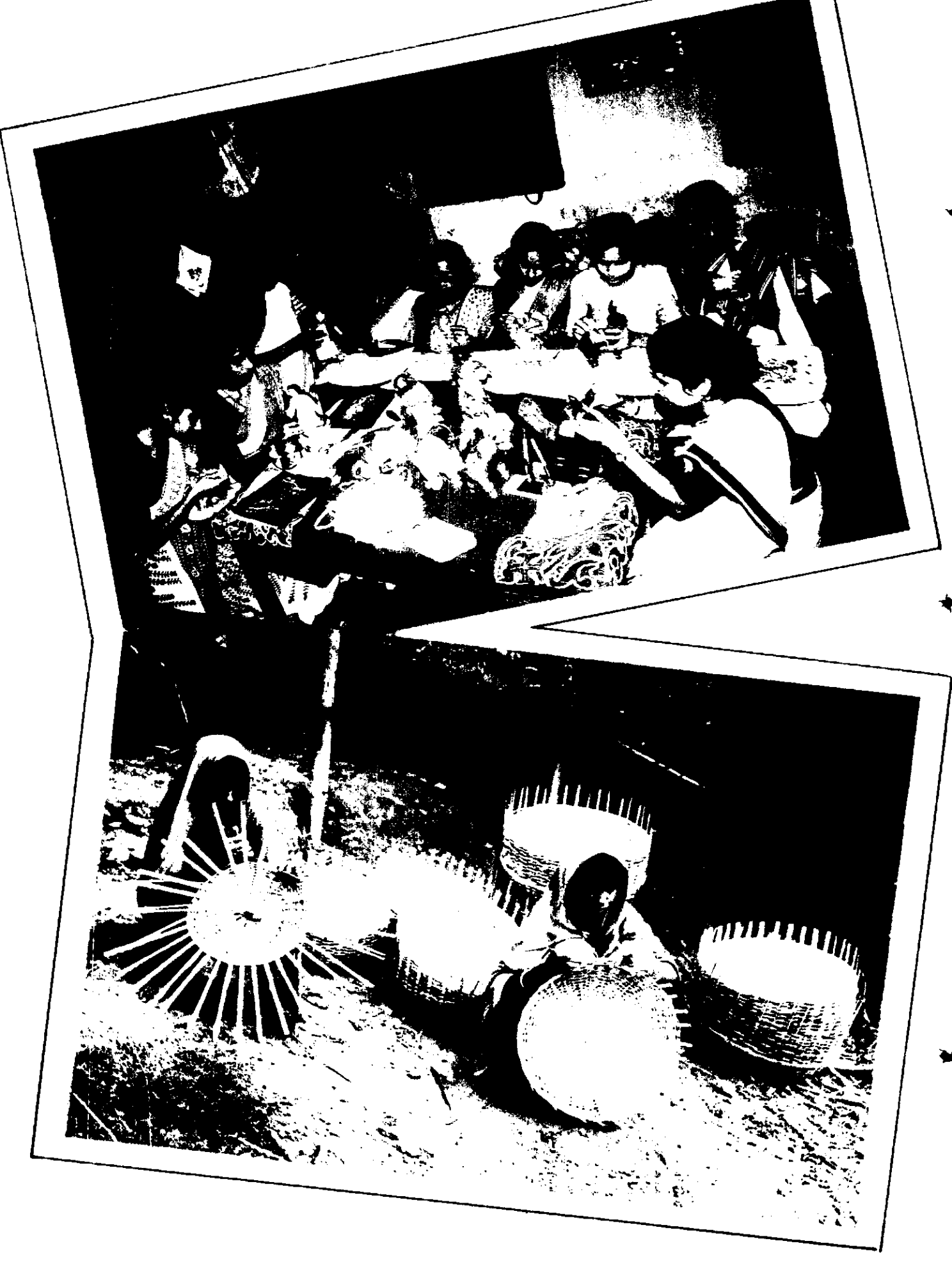

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय
की प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष 43 | अंक 8 | ज्येष्ठ-आषाढ़ 1920 | जून 1998

कार्यकारी संपादक
बलदेव सिंह मदान

उप संपादक
रजनी

संपादकीय पता
संपादक, 'कुरुक्षेत्र', ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय,
कृषि भवन, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 3015014
फैक्स : 011-3015014
तार : ग्राम विकास

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी

विज्ञापन प्रबंधक
के.एस. जगन्नाथ राव

आवरण सज्जा
एम.एम. मलिक
सलिल शैल (मुख पृष्ठ और चित्र)

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत, विज्ञापन और प्रसार संख्या प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक-4, लेवल-7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110-066 से करें। विज्ञापनों के लिए विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक-4, लेवल-7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110 066 से संपर्क करें। फोन : 6105590

मूल्य एक प्रति : पांच रुपये
वार्षिक शुल्क : 50 रुपये
द्विवार्षिक : 95 रुपये
त्रिवार्षिक : 135 रुपये

हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी प्रकाशित इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

इस अंक में

● पर्यावरणीय संकट का निवारण	प्रो. गोपाल लाल	3
● उमड़ते शहर और बिगड़ता पर्यावरण	डा. अलका श्रीवास्तव	5
● पारिस्थितिकी संकट और मानव का भविष्य	प्रो. अनिल कुमार सिन्हा	7
● गांवों में प्रदूषण : समस्या और समाधान	डा. विमला उपाध्याय	9
● नदियां : स्वच्छधारा क्यों बनी विष की धारा	राजेन्द्र कुमार राय	11
● रमा (कहानी)	ममता	12
● बेरोजगारी का आसान समाधान : पशुपालन	डा. डी.डी. शुक्ला	15
● ग्रामीण परिवेश के संदर्भ में पर्यावरण प्रबंधन की समस्याएं	मनभरन प्रसाद द्विवेदी एवं ई. रमाकांत त्रिपाठी	16
● शुद्ध आमदनी और शुद्ध पर्यावरण के लिए सामाजिक वानिकी	हरिश्चन्द्र व्यास	18
● जल समस्या और भारतीय नीति	विजय कुमार	20
● डवाकरा से ग्रामीण महिलाओं को कैसे मिले आर्थिक लाभ	डा. नीलम कुंवर एवं वंदना वर्मा	22
● विकास और पर्यावरणीय शिक्षा	डा. आर.के. खितौलिया एवं श्रीमती बीना आनन्द	23
● हिन्दी राज्यों में ग्रामीण महिला साक्षरता : एक चुनौती	गीता चौबे	26
● ग्राम संकल्प का महत्व (स्थायी स्तम्भ)	जयप्रकाश नारायण	29
● कृषि श्रमिकों की समस्याएं	डा. मोहम्मद हारून	30
● ग्रामोद्योग का विकेंद्रीकरण : दूरगामी प्रभाव अपेक्षित	डा. शुभंकर बनर्जी	32
● समस्याएं ग्रामीण बालकों की	दीपक कुमार सिन्हा	35
● धूम्रपान का अर्थशास्त्र : एक विश्लेषण	मो. तारिक	37
● झींगा मत्स्य उद्योग	डा. सीताराम सिंह पंकज	38
● उत्तरकाशी से यमुनोत्री तक	बजरंग बिहारी तिवारी	41
● करेला : कड़वा जरूर, लेकिन गुणों से भरपूर	मीना	44

पाठकों के विचार

भारतीय संस्कृति का साक्षात दर्शन

मार्च 1998 के अंक में प्रकाशित कहानी *सुबरनी* के माध्यम से लेखिका विमलेश गंगवार 'दिपि' ने वर्तमान सामाजिक और ग्रामीण स्थिति का जो परिदृश्य आंका है, वह न केवल मार्मिक है अपितु ग्रहण करने योग्य भी है, क्योंकि यही भारतीय संस्कृति का दर्शन है। आज के दौर में भले ही वी.आई.पी. और धनाढ्य व्यक्तियों को दुनिया की सारी भौतिक वस्तुएं रुपये-पैसों में नजर आए लेकिन प्यार, जज़बात, आत्मीयता, सदाचार, मानवीयता जैसे शब्द इसकी पहुंच से दूर होते जा रहे हैं।

पश्चिमी संस्कृति तथा सभ्यता की नकल भारतीय लोगों में जोर पकड़ती जा रही है जिसके कारण वे अपने बचपन, ग्रामीण मित्र, वे चौराहे जिस पर कभी वे दौड़ते थे, वे स्कूल जहां से उन्हें तालीम हासिल हुई—सभी को छोड़ कर अब उसकी आत्मा सरकारी कालोनी, बंगला और पांच सितारा होटलों में बस गई है। लेखक ने *सुबरनी* के माध्यम से यह दर्शाने और समझाने की कोशिश की है कि सिर्फ अच्छे कपड़े, खान-पान, बंगला, गाड़ी से ही व्यक्ति की पहचान नहीं होती है। सुबरनी के पास उपरोक्त चीजों का अभाव था, फिर भी वह अपनी मुंहबोली भौजी तथा भाई के प्रति और भाई तथा भाभी को सुबरनी के प्रति असीम श्रद्धा, प्यार तथा आत्मीयता है। आज जरूरत है इस बात को समझने और संकल्प लेने की, बाकि बातें तो अपने आप हल हो जाएंगी।

रामदेव सिंह, पटेल नगर (साहेबगंज), भागलपुर, बिहार

भारतीय नारी की वेदना

कुरुक्षेत्र के मार्च 1998 के अंक में प्रकाशित *नारी चेतना और अस्मिता की पहचान का दिन* में आशारानी व्होरा ने भारतीय नारी की वेदना से साक्षात्कार कराने का एक सफल प्रयास किया है। अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर लिखे गए इस आलेख में लेखिका ने वर्तमान समय में स्त्रियों की समस्याओं के विभिन्न पक्षों और इनके समाधान का वर्णन करते हुए '..... नारी द्वारा नारी का शोषण भी बंद करना होगा..... पिछड़ी बहनों को भी साथ लेकर चलना होगा..... अधिकार-दायित्व के बीच संतुलन कायम करना होगा.....' जैसे हृदयस्पर्शी वाक्यों से स्वत: ही पाठकों का ध्यान आकर्षित कर लिया है। श्वेता मिश्रा ने भी अपने निबंध में ग्रामीण महिलाओं में व्याप्त शिक्षा संबंधी समस्याओं के विभिन्न कारणों और समाधानों को प्रस्तुत कर इसकी आवश्यकता पर प्रकाश डाला है। वस्तुत: भारतीय स्त्री आज एक द्विविधापूर्ण स्थिति से गुजर रही है, जिसमें एक ओर पश्चिमी सभ्यता का आकर्षण है, तो दूसरी ओर प्राचीन संस्कृति की मर्यादा का भय, कहीं वह अति स्वच्छन्दता से ग्रस्त है, तो कहीं आत्महीनता से। देश के 384 जिलों में राष्ट्रीय महिला आयोग की ओर से कराए गए सर्वेक्षण का अनुभव बताते हुए अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के अवसर पर मोहिनी गिरि ने कहा कि आज भी देश की साक्षर और निरक्षर महिलाओं को अपने अधिकारों की जानकारी नहीं है।

राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में महिलाओं की भूमिका शरीर में मेरूदंड के समतुल्य है, किंतु यह अमूल्य मानव-संपदा गलत नीतियों, दोषपूर्ण और भेदभावपूर्ण व्यवहार, उचित मार्गदर्शन के अभाव, समर्पित प्रयासों की कमी और विभिन्न सामाजिक, आर्थिक और मनोवैज्ञानिक कारणों के फलस्वरूप राष्ट्र-निर्माण के कार्यों में अपेक्षित सक्रिय योगदान नहीं दे पा रही है। अतएव समय की मांग को देखते हुए समाज के विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों का यह पुनीत कर्त्तव्य है कि अपना अधिकाधिक योगदान देकर समाज में स्त्रियों को अपेक्षित स्थान प्रदान करें।

अनिल कुमार सिंह झा, मनौर, मनीगाछी, दरभंगा, बिहार

स्नेह, वात्सल्य की प्रतीक : सुबरनी

कुरुक्षेत्र का मार्च 1998 का अंक संयोगवश पढ़ने को मिला। बहुआयामी पत्रिका में विमलेश गंगवार 'दिपि' द्वारा लिखी कहानी *सुबरनी* पढ़कर भावविभोर हो गए। भारतीय ग्रामीण सभ्यता में स्नेह, वात्सल्य अभी भी जिंदा है। नि:संदेह ग्रामीण सभ्यता, व्यवस्था ने भारतीय संस्कृति को संजोया-संवारा है। सामाजिक रिश्ते समाज की वह धरोहर हैं जो जीवन के सच्चे सुख और दु:ख में भागीदारी का सुखद एहसास कराते हैं।

पवन, कुमुद 'बंशीवाल', परिहार नगर (भदवासिया), पो. के.यू.एम. जोधपुर (राज.)

अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर अंक : सराहनीय प्रयास

मार्च 1998 का अंक अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस पर विशेष रूप से प्रशंसनीय है। इसके आवरण पृष्ठ की सज्जा बेहद सार्थक और आकर्षक है जो महिलाओं के बदलते परिवेश में उनकी भूमिका की महत्ता तथा कार्यक्षमता को प्रस्तुत करती है। इस अंक का लेख *ग्रामीण महिलाओं की शिक्षा संबंधी समस्याएं और समाधान* महिलाओं की साक्षरता दर की कमी को स्पष्ट करता है। साथ ही *ग्रामीण विकास के सूत्र* लेख भी बहुत ज्ञानवर्द्धक लगा। इसके अतिरिक्त *शताब्दी का अंतिम महाकुंभ* भारतीय संस्कृति में महाकुंभ की महत्ता तथा सांस्कृतिक जागृति एवं एकता को व्यक्त करता है।

कामिनी बाला, बी-138/3, धुर्वा, रांची, बिहार

पर्यावरणीय संकट का निवारण

प्रो. गोपाल लाल*

भारत ने आजादी के पचास वर्षों में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की है, जिन पर हम गर्व कर सकते हैं। फिर भी आज अनेक ऐसे क्षेत्र हैं, जिन पर खास ध्यान दिया जाना आवश्यक है। देश में गरीबी, अज्ञानता, स्वास्थ्य की अपर्याप्त देखभाल, रोजगार और बिगड़ते पर्यावरण की समस्या दूर करने के लिए अभी बहुत कुछ करना बाकी है। जब तक हम इन समस्याओं की ओर पर्याप्त ध्यान देकर उन्हें हल करने का प्रयास नहीं करेंगे, तब तक हमें न्यायपूर्ण और समानता पर आधारित समाज कल्याण का लक्ष्य हासिल नहीं हो पाएगा।

आज गांवों की तुलना में शहरी विकास और विस्तार की गति तीव्र है। शहरों में बिजली, पानी, सड़क, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध हैं, जबकि देश के दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्रों में इन सुविधाओं का अभाव है। यही कारण है कि गांवों से शहरों की ओर पलायन की प्रवृत्ति जारी है। रोजी-रोटी के लिए भी यह प्रवृत्ति दिनोंदिन बढ़ती जा रही है जिसके फलस्वरूप शहरों में उपलब्ध बुनियादी सुविधाएं कम पड़ने लगी हैं और शहरी क्षेत्रों का पर्यावरण दूषित होने लगा है।

इसलिए समय की मांग है कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी शहरी क्षेत्रों की भांति जीवन के सुअवसर सुलभ करवाए जाएं ताकि पर्यावरण संकट के साथ-साथ अनेक समस्याओं से मुक्त रहा जा सके। देश में प्राकृतिक संसाधनों और श्रम-शक्ति की कमी नहीं है। यदि हम इनका विवेकपूर्ण समुचित उपयोग करें, तो हम आगे बढ़ सकते हैं। यदि हम सामाजिक वानिकी, वन संपदा, वन और वन्य जीव, जल-जंतु, मृदा-वायु-जल और ऊर्जा का संरक्षण आदि की ओर पर्याप्त ध्यान दें, तो महात्मा गांधी का स्वदेशी और स्वावलंबन का नारा हमारे लिए आज भी उपयोगी सिद्ध होगा। इसके लिए हमें अपने आपमें विश्वास पैदा कर, प्रकृति के प्रति लगाव उत्पन्न करना होगा और संवेदनशील बनना पड़ेगा। साथ ही विदेशी कंपनियों और विदेशी कर्ज की ओर आश्रित रहने की प्रवृत्ति भी छोड़नी होगी।

यह तो सर्वविदित है कि भारत प्राकृतिक और सांस्कृतिक विविधता वाला देश है। देश की जनसंख्या के एक बड़े हिस्से का जीवन मूलतः स्थानीय प्रकृति और पर्यावरण पर निर्भर है। चाहे वे भूमिहीन मजदूर हों या छोटे-बड़े किसान अथवा आदिवासी ग्रामीण जन, मछुआरे हों या चरवाहे या कारीगर हों—ये सभी लोग अपना गुजारा निकटवर्ती पर्यावरण से पूरा करते हैं। यदि यह कहा जाए कि प्राकृतिक संसाधनों का आर्थिक महत्व निम्न मध्यमवर्गीय समाज के लिए अधिक है, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं। जबकि इनका लाभ धनी वर्ग को अधिक मिला है और इसी वर्ग ने इन संसाधनों का निर्दयता से विदोहन और शोषण किया है। यह भी एक विडंबना है।

एक तरफ ग्रामीण निर्धन वर्ग अनाज के लिए स्थानीय कृषि; ईंधन के लिए आस-पास के खेत तथा जंगल; औजारों के लिए निकटवर्ती वन और पानी स्थानीय नदियों, झीलों और कुंओं से प्राप्त करते हैं, तो दूसरी तरफ संगठित क्षेत्र की शहरी जनसंख्या और धनी किसान हैं जो कम कीमत पर देश के संसाधनों का आवश्यकता से अधिक विदोहन और उपयोग करते हैं क्योंकि जिनके पास आर्थिक तथा राजनैतिक शक्ति है, वे विकास का भरपूर लाभ स्वयं हड़पना चाहते हैं। लेकिन विकास के कारण हुई हानि की कीमत दूसरों को, विशेषकर भूमिहीन और अकुशल वर्ग को चुकानी पड़ती है और अंततः पर्यावरण संकट के साथ ही क्षेत्रीय विषमताएं बढ़ती जाती हैं। यही नहीं अत्यधिक खनन, वन तथा वन्य-जीवों की जिंदगी और मौत का सवाल बन गया है।

अत्यधिक खनन पर रोक

गत वर्ष देश के उच्चतम न्यायालय ने वन क्षेत्र में खनन कार्य पर रोक लगाने का ऐतिहासिक निर्णय दिया। इस निर्णय से एक ओर वन-विभाग के हाथ मजबूत हुए हैं, तो दूसरी ओर अचानक लाखों मजदूर बेकार हो गए हैं और खानों पर आधारित औद्योगिक प्रतिष्ठान भी ठप्प हो गए हैं। भारत जैसे विकासशील राष्ट्र के लिए अपनी खनिज संपदा का सही तकनीक से दोहन करना बहुत जरूरी है क्योंकि वन क्षेत्रों में खनन से पर्यावरणीय परिणाम भी घातक होते हैं। गहरी होती खानों के कारण जल इतना नीचे चला गया है कि आम आदमी को पीने का पानी तक नसीब

*अध्यक्ष, आर्थिक प्रशासन एवं वित्तीय प्रबंध, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजगढ़, अलवर, राजस्थान

नहीं होता। इसलिए रोटी और पर्यावरण के बीच संतुलन स्थापित करने की समस्या भी कम गंभीर नहीं है।

खानों के बंद होने से देश में स्थापित अनेक छोटी-बड़ी औद्योगिक इकाइयां भले ही बंद और प्रभावित हुई हों और राज्य सरकारों को आय का नुकसान हुआ हो, लेकिन न्यायालय का निर्णय बे-जुबान जीवों के पक्ष में होना एक संवेदनशील स्वागतयोग्य कदम है। ऐसे ही निर्णयों से पर्यावरण संरक्षण को बल मिलेगा और हमारी अनमोल सांस्कृतिक धरोहर की रक्षा संभव हो पाएगी तथा प्रकृति में पारिस्थितिक प्रक्रिया तथा जीवन सह पद्धतियों की निरंतरता में वृद्धि की संभावनाएं बढ़ेंगी जो हमारी भावी पीढ़ी के लिए वरदान साबित होगी।

पारिस्थितिक संतुलन

बदलते परिवेश में मनुष्य की स्वार्थपूर्ण नीति के फलस्वरूप जीव-जंतुओं, वनस्पतियों आदि की हजारों प्रजातियां हमेशा-हमेशा के लिए लुप्त होती जा रही हैं। आज देश में आधी से भी कम भूमि पर वन रह गए हैं। आज इस दृष्टि से मानव से बड़ा इनका कोई शत्रु नहीं है। यही कारण है कि पारिस्थितिक असंतुलन के दुष्प्रभाव बढ़ रहे हैं जो वर्तमान तथा भावी पीढ़ियों के लिए शुभ संकेत का द्योतक नहीं है। इस दृष्टि से पारिस्थितिक संतुलन कायम रखना अति आवश्यक है। इसे बनाए रखने के लिए हमें प्राकृतिक संसाधनों, वन्य जीवों और वनस्पति प्रजातियों को पूर्ण संरक्षण प्रदान करना होगा। इन्हें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से होने वाले नुकसान से बचाकर ही सफलता प्राप्त की जा सकती है।

देश के ग्रामीण क्षेत्रों में पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने के लिए यदि संपोषित विकास की धारणा को विकसित करके प्रोत्साहित किया जाए तो धीरे-धीरे लोगों में पर्यावरण के प्रति लगाव पैदा होगा, जिसका लाभ देश के भावी आर्थिक विकास में सहायक सिद्ध होगा। इसलिए बढ़ती आबादी और सिमटते प्राकृतिक संसाधनों के कारण उत्पन्न खतरों के प्रति हमें सजग रहना है। बढ़ती आबादी पर नियंत्रण करने के लिए भी स्वचेतना की भावना का विकास जरूरी है। देश में चेन्नई (तमिलनाडु) और केरल ही ऐसे दो राज्य हैं जिन्होंने इस क्षेत्र में सफलता अर्जित की है।

प्रदूषण नियंत्रण

आज बढ़ते शहरीकरण तथा औद्योगीकरण के फलस्वरूप वनों की कटाई जारी है। जबकि पारिस्थितिक संतुलन के लिए देश की एक-तिहाई भूमि पर अनिवार्य रूप से वन रहने चाहिए। जलवायु प्रदूषण खासकर तेजी से बढ़ रहा है। इसके अलावा शोर से होने वाले नुकसान से लोग बेखबर हैं। विशेषकर बच्चों को खांसी, जुकाम और सांस रोग में तिगुनी वृद्धि बढ़ते प्रदूषण के कारण हुई है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार प्रतिवर्ष 40 लाख बच्चे इस तरह के रोगों की वजह से मौत के शिकार हो जाते हैं।

आज देश के महानगरों की हवा में तैरते कणदार पदार्थों की मात्रा विश्व स्वास्थ्य संगठन के मापदंडों से दुगुनी पाई गई है। जहां भी देखो—धूल, मिट्टी और वाहनों से इतना अधिक धुंआ हवा में मिल रहा है कि दिल्ली वाले थूकते भी हैं तो काला थूक निकलता है। इस दृष्टि से दिल्ली दुनिया का तीसरा सर्वाधिक प्रदूषित शहर बन गया है जबकि देश में तो वह पहले नंबर पर है। आगरा का विश्व-प्रसिद्ध ताजमहल भी प्रदूषण की चपेट में आ चुका है।

इसलिए प्रदूषण के बढ़ते दुष्प्रभावों को रोकने के लिए जरूरी है—सूक्ष्म पर्यावरण को सुधारा जाए ताकि सांस जैसी बीमारियों को रोका जा सके। इसके लिए वट, तुलसी, आंवला, नीम, बेल और पीपल जैसे वृक्षों का अधिकाधिक वृक्षारोपण किया जाना चाहिए जो भारतीय जलवायु में अधिकाधिक फलते-फूलते हैं। इस प्रकार के वृक्षों की आबोहवा पारिस्थितिकी संतुलन बनाए रखने में मददगार साबित होगी।

पर्यावरण प्रदूषण का मामला मात्र नौकरशाही के भरोसे छोड़ना उचित नहीं है। पर्यावरण संबंधी मापदंडों का कड़ाई से पालन करने में प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं। इस प्रकार के बोर्डों का यदि और अधिक विकास तथा विस्तार किया जाए, तो प्रदूषण से उत्पन्न खतरों से सावधान रहने की सलाह तथा सुझावों में वृद्धि होगी। प्रदूषण नियंत्रण के लिए हर स्तर पर आधुनिक तकनीक का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। तकनीक चाहे कितनी ही महंगी हो, सर्वश्रेष्ठ ही अपनाई जानी चाहिए। ऐसा भी नहीं है कि देश में इतने संसाधन नहीं हैं। प्रदूषण नियंत्रण संयंत्रों की स्थापना पर जोर दिया जाना चाहिए।

प्रदूषण नियंत्रण के लिए खान अभियंताओं का भरपूर सहयोग तथा सलाह भी एक कारगर उपाय है। इनकी देख-रेख में ही खनन कार्य किया जाए तो वन-विनाश पर रोक लग सकती है। मध्य प्रदेश के खनन क्षेत्र का उदाहरण लिया जा सकता है। जहां खानों के आस-पास उद्यान विकसित किए गए हैं। इस प्रकार के उद्यानों का विकास देश के अन्य सभी खनन क्षेत्रों में किया जा सकता है। इससे खनन कार्य जारी रहने पर भी पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता।

नवीनतम सरकारी प्रयासों के तहत देश के विभिन्न भागों में लगभग 600 पर्यावरण प्रयोगशालाएं स्थापित की जाएंगी। भारत-जर्मन सहयोग परियोजना के प्रमुख डा. आलरिख के अनुसार इन प्रयोगशालाओं को अंतर्राष्ट्रीय मानदंडों के अनुरूप कार्य करने के लिए सभी आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएंगी। इसके लिए जयपुर के मंडल परिसर में केंद्रीय प्रयोगशाला के दो कक्ष शीघ्र तैयार होने की संभावना है। इसी प्रकार प्रदूषण नियंत्रण संयंत्रों की स्थापना के प्रयासों में तेजी आई है। राष्ट्रीय पर्यावरण अभियांत्रिकी अनुसंधान संस्थान (नीरो) द्वारा देश के प्रदूषण-क्षेत्रों में और अधिक सर्वेक्षण किया जाना चाहिए।

अत: पर्यावरण संकट का सर्वोत्तम हल पर्यावरणीय शिक्षा और संपोषित विकास में निहित है। इनके माध्यम से जन-जीवन में उचित दृष्टिकोण विकसित करके इन्हें सर्वांगीण विकास के एक महत्वपूर्ण अस्त्र के रूप में स्वीकार किया जा सकता है, तभी हम संतोष की शुद्ध सांस ग्रहण कर पाएंगे। ❑

उमड़ते शहर और बिगड़ता पर्यावरण

डा. अलका श्रीवास्तव

महानगरों और नगरों में बढ़ती आबादी के कारण प्रकृति से उपलब्ध होने वाले संसाधनों पर भी दोहन का भार पड़ा है। 'गांवों का भारत' कहलाने वाले हमारे देश की अधिकतम आबादी द्रुत गति से शहरों की ओर पलायन कर रही है, जिससे देश की कुल जनसंख्या का एक-चौथाई भाग रोजगार हेतु शहरों की तंग बस्तियों के प्रदूषित वातावरण में जीवन-यापन के लिए अभिशप्त है। इन महानगरों में विकास के नाम पर नित नए कारखाने चालू किए जाते हैं, जिनके लिए प्राकृतिक संसाधनों की जरूरत होती है। इसी की पूर्ति के लिए प्रकृति के दोहन के स्थान पर उसका शोषण होने लगा है।

बढ़ती जनसंख्या के कारण देश की प्राकृतिक संपदा पर काफी दबाव पड़ा है। प्रकृति का रूप बदल कर, उसे नष्ट करके अब लोगों की कोशिश शहरी और औद्योगिक जरूरतों को पूरा करने और पैसा कमाने की है। प्रकृति के शोषण तथा प्रदूषण से पर्यावरण का संतुलन अस्त-व्यस्त हो गया है। विज्ञान और तकनीकी का उपयोग मानवता के हित में जितना होना चाहिए था, उस अनुपात में उसकी उपादेयता सिद्ध नहीं हो सकी है। दूसरी ओर, विज्ञान और तकनीकी के विभिन्न आविष्कारों से जीवन को सुखमय बनाने के लिए अधिक कमाने वाले हाथों की आकांक्षा के कारण जनसंख्या में द्रुत गति से वृद्धि हुई है।

चेतना का अभाव

विकसित देश, पर्यावरण की शुद्धता बनाए रखने तथा जनसंख्या नियंत्रण जैसे विषयों पर अत्यंत सचेत हैं, जबकि भारत जैसे विकासशील देश में अभी भी इस चेतना का अभाव है। इससे भी बड़ा तथा कड़ुवा सच यह है कि सामान्य जनमानस में न तो पर्यावरण और पारिस्थितिकी संतुलन की संकल्पना है, न ही उन्हें पर्यावरण से होने वाले लाभों तथा नुकसानों की कोई जानकारी है। बढ़ते शहरीकरण से अनेक समस्याएं पनपी हैं जो और उभर कर आ रही हैं। अब इसका असर जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं पर भी दिखने लगा है।

शुद्ध पेयजल तथा शुद्ध वायु की कमी

शहर भर के कूड़े-करकट और शौच आदि की गंदगी को नदियों और जलाशयों में बहा देना—प्रदूषण का कारण बनता है। व्यक्तिगत लालच के कारण उद्योगों, कल-कारखानों को नगरों तथा महानगरों के आस-पास स्थापित किया गया और उत्पादनों के अपशिष्टों को बेरोक-टोक नदियों में इस तरह बहा दिया जाता है, मानो वह इसी के निमित्त हैं। रंगाई-छपाई तथा चमड़े के उद्योगों के कारण भूमिगत जल भी प्रदूषित होने लगा है। उदाहरणार्थ—पाली, कानपुर, बाड़मेर और तमिलनाडु की स्थितियों को देखा जा सकता है। इन जगहों पर जल में रासायनिक और खनिज पदार्थों की मात्रा इतनी ज्यादा है कि पानी पीने के ही नहीं, सिंचाई के योग्य भी नहीं रह गया है। प्रदूषित जल से प्राप्त होने वाली मछलियों के सेवन से जो दुष्परिणाम सामने आए हैं, वह लोगों को जागरूक करने के लिए काफी होने चाहिए।

बढ़ती जनसंख्या के कारण वाहन संख्या भी बढ़ी है तथा इनसे निकले धुएं और शोर के कारण वातावरण प्रदूषित हुआ है। वायु प्रदूषण, अकेले ही 15-20 प्रतिशत बीमारियों का कारण है। भारत में आधारभूत उद्योगों के अंतर्गत लोहा, इस्पात, सीमेंट, रसायन तथा इंजीनियरिंग उद्योग को प्रोत्साहन दिया गया है। ऊर्जा, विद्युत, पेट्रोलियम और कोयला आदि उद्योगों को भी प्राथमिकता दी गई है, जो समय की जरूरत भी है। परंतु उद्योगों तथा कल-कारखानों से निकलने वाले विषैले अवयव वायुमंडल को पूर्ण रूप से विषाक्त बनाने में लगे हुए हैं। आज वायु प्रदूषण की समस्या महानगरों में ही नहीं, बल्कि छोटे-छोटे कस्बों में भी वातावरण को दमघोंटू बना रही है। महानगरों तथा नगरों की हवा में तो सांस लेना भी स्वास्थ्य की दृष्टि से उचित नहीं रह गया है।

धूलकणों का हानिकारक प्रभाव

धूल के कण जब एक निश्चित सीमा से ज्यादा हो जाते हैं, तो उनसे भी वायुमंडल दूषित होता है, स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और लोगों की कार्य-क्षमता प्रभावित होती है। घर के काम-काज में झाड़-बुहार करने, साफ-सफाई करने, घरों-मकानों की धूल झाड़ने, चूल्हा फूंकने, कोयला-रबड़-तेल कचरे आदि को जलाने, सीमेंट-चूने की पिसाई-छनाई से प्रायः धूलकण वातावरण में बहुतायत में फैलते हैं। दिल्ली जैसे महानगर में 600 माइक्रो ग्राम धूलकण वातावरण में मौजूद हैं, जबकि इनकी 60-70 माइक्रो ग्राम से अधिक मात्रा शरीर के लिए हानिकारक है। सांस के माध्यम से ये कण फेंफड़ों में पहुंच कर रक्त-संचरण को दुष्प्रभावित करते हैं। इस समस्या से निपटने में प्रकृति ही सहायक सिद्ध हो सकती है। यदि पीपल, गुलमोहर, कैजुरिना, नीम, अशोक, जामुन जैसे पेड़ बड़ी संख्या में लगाए जाएं, तो वह प्रभावी तरीके से प्रदूषण की समस्या से निपट सकते हैं।

ध्वनि प्रदूषण

शहरीकरण का एक भयावह परिणाम मनोरंजन के साधनों का विशाल पैमाने पर उपयोग भी है। लाउड स्पीकर, रेडियो, टी.वी., टेप रिकार्डर आदि उपकरण जहां निजी जीवन में उच्च जीवन-स्तर के मापदंड तथा कुछ हद तक उपयोगी एवं मनोरंजक सिद्ध होते हैं, वहीं तेज आवाज में बजाए जाने के कारण वह ध्वनि प्रदूषण का कारण भी बन जाते हैं। रोगियों, विद्यार्थियों तथा अध्ययन-अध्यापन के लिए तो यह ध्वनि प्रदूषण हानिकारक है ही, सामान्य जीवन में भी यह मनौवैज्ञानिक व्याधियों तथा तनावों का कारण बनता है।

स्थिति विश्लेषण और संभावित हल

अपने देश में रोजगार की समस्या इतना विकट रूप ले चुकी है कि गांवों से लोग रोजगार तथा ज्यादा सुविधाओं, जल्दी धन अर्जित करने के उद्देश्य से शहरों की ओर पलायन करने लगते हैं। ये लोग रिक्शा चालक, श्रमिक आदि के रूप में काम करने लगते हैं तथा उनका पूरा परिवार मजदूरी और रोटी कमाने के फेर में पड़ जाता है। आज स्थिति यह है कि महानगरों की एक-चौथाई जनसंख्या सड़कों की पटरियों पर अपना जीवन व्यतीत कर रही है। ऐसी जगहों पर रहना; जहां स्वच्छ जल, जल निकासी, शौचालय, बिजली तथा सफाई की व्यवस्था आदि का नितांत अभाव रहता है; स्वयं मनुष्य और पर्यावरण दोनों ही के लिए खतरनाक है।

ऐसा नहीं है कि इस अंधी दौड़ में केवल श्रमिक तथा मजदूर वर्ग ही शामिल है। कस्बों और छोटे शहरों में सादा जीवन व्यतीत कर रहे सुव्यवस्थित लोग भी आधुनिक सुविधाओं, महानगरों की तड़क-भड़क, अधिक लालसाओं के लालच में घिर कर इस दौड़ में शामिल हो जाते हैं। देश के शहरों में निरंतर बढ़ रही जनसंख्या की विकट स्थिति की एक झलक तालिका में देखी जा सकती है।

देश के प्रमुख महानगरों में जनसंख्या वृद्धि

(हजार में)

शहरी क्षेत्र	1901	1951	1961	1971	1981	1991
कलकत्ता	1,488	4,589	5,737	7,031	9,166	14,086
मुम्बई	813	2,967	4,952	5,971	8,203	13,654
दिल्ली	214	1,437	2,359	3,647	5,752	10,032
मद्रास	594	1,542	1,945	3,170	4,277	8,340
हैदराबाद	448	1,128	1,249	1,796	2,566	5,342
अहमदाबाद	186	877	1,206	1,742	2,515	5,321
बंगलौर	159	779	1,200	1,654	2,914	5,067
कानपुर	203	705	971	1,275	1,685	5,695
पुणे	164	606	791	1,135	1,685	4,358
नागपुर	128	449	644	930	1,298	4,055

उपाय

महानगरों तथा नगरों में पर्यावरण की बिगड़ती स्थिति को देखते हुए विभिन्न योजनाओं के तहत लोगों को उचित आवासीय सुविधाएं उपलब्ध कराई जानी चाहिए, ताकि उन्हें पशुओं-सा जीवन जीने के लिए विवश न होना पड़े और सार्वजनिक रूप से हमारा पर्यावरण भी स्वच्छ रहे। शहरों में सफाई की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए ताकि गंदगी के ढेर वातावरण को संदूषित न कर सकें और बीमारियों का अनुपात भी न्यूनतम रहे। सरकारी तथा गैर-सरकारी संस्थाओं को यह प्रयास करने चाहिए कि जन-मानस का ध्यान बड़े शहरों से हट कर छोटे शहरों, कस्बों तथा गांवों की ओर जाए। वहां इतनी सुविधाएं मुहैया कराई जानी चाहिए कि लोगों को वहीं बसने के लिए प्रोत्साहन मिले। गांवों से लोगों के शहरों की ओर के सफर को जबरन नहीं रोका जा सकता किन्तु उन्हें वहीं बने रहने के कारणों के प्रति जागरूक करके इस अभिवृद्धि को रोका जा सकता है। जीविका कमाना ही प्रमुख आवश्यकता है जिसके कारण लोग शहरों की ओर खिंचते हैं। उन्हें इसकी सुविधा यदि वहीं मुहैया करा दी जाए तो शायद यह 'एकल-दिशा-अभिमुख' पलायन या कहिए विस्थापन रुक सकता है। विद्यालयों में बच्चों को सचेत करना चाहिए कि वह पर्यावरण, पारिस्थितिकी और उसके संतुलन को समझें। संचार माध्यमों का वृहद स्तर पर उपयोग करते हुए लोगों में बिगड़ते पर्यावरण के लिए चेतना जाग्रत की जानी चाहिए।

नगरों तथा महानगरों में मार्गों के दोनों तरफ तथा अन्य उपयुक्त स्थानों पर यदि वृक्षारोपण किया जाए और इस वृक्षारोपण कार्यक्रम को यदि 'लोगों का कार्यक्रम' के रूप में विकसित किया जाए तो जन-समुदाय को प्रचुर मात्रा में शुद्ध हवा और छाया उपलब्ध हो पाएगी। घरेलू कचरे का पुनः शोधन करके उपयोगी ऊर्जा प्राप्त करने की दिशा में प्रयास किए जाने चाहिए। ऐसी कोशिशें बहुत पहले से हो रही हैं और वैज्ञानिक इसमें सफल भी हो रहे हैं। जरूरत ऐसे प्रयासों को और अधिक गतिमान करने की है। उदाहरण के लिए प्लास्टिक जैसी अपक्षयित न होने वाली वस्तु के उत्पादों के निर्माण का उद्योग हमारे देश में काफी फल-फूल रहा है। अमरीका में तो प्लास्टिक के थैलों का उपयोग ही बंद हो गया है। प्लास्टिक उद्योग का कचरा प्रतिवर्ष समुद्री पक्षियों, स्तनधारियों और मछलियों की मृत्यु का कारण बनता जा रहा है। अनेक ऐसे रसायन जिनका उपयोग अन्य विकसित देशों में हानिकारक होने के कारण प्रतिबंधित है, अपने देश में खुलेआम इस्तेमाल हो रहे हैं।

मानसिकता में बदलाव लाने की जरूरत

आज पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी एक खास वर्ग के लोगों में प्रचलित शब्द मात्र नहीं है, बल्कि एक विस्तृत अध्याय है, एक खुली संभावनाओं वाला क्षेत्र है जहां हम सबको अपनी भागीदारी निभानी है। इस वास्तविकता से बच्चों, स्त्रियों, वृद्ध जनों तथा अन्य जन-मानस, सभी को परिचित कराना है। पर्यावरण से कट कर नहीं, अपितु जुड़कर ही जीवन संभव है। अतः उसके महत्व को आज के परिप्रेक्ष्य में समझना अनिवार्य है। पर्यावरण सुधारने के उपायों को कड़ाई से लागू किया जाना जरूरी है। विकास कार्यक्रमों को लागू करने से पूर्व देखना होगा कि उनसे हमारे अभयारण्य, वन उद्यान, नदियां, समुद्र, खाड़ियां और पहाड़ दुष्प्रभावित तो नहीं हो रहे हैं। हमें पारिस्थितिकी तथा अर्थ-व्यवस्था दोनों में संतुलन रखते हुए अपने कार्यक्रमों की योजनाबद्धता करनी है। ❑

पारिस्थितिकी संकट और मानव का भविष्य

प्रो. अनिल कुमार सिन्हा*

मानव सभ्यता के विकास के समय से ही यह स्वीकार किया जाता रहा है कि मानव और प्रकृति को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। मानव का जीवन-आश्रय प्राकृतिक व्यवस्था है। यह प्राकृतिक व्यवस्था पांच तत्वों में विभाजित है—वायु, जल, भूमि, जीव-जंतु और वनस्पतियां। ये पांचों तत्व एक-दूसरे पर निर्भर हैं, जो एक प्राकृतिक चक्र बनाते हैं। इस चक्र के किसी भी घटक में न्यूनतम परिवर्तन अथवा प्रकृति के किसी घटक को बाधा पहुंचाई जाए या नष्ट किया जाए तो प्रकृति के अन्य घटक भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। इस प्रकार पृथ्वी के पर्यावरण की भौतिक, सांस्कृतिक तथा जैवकीय विशेषताएं एक-दूसरे से अंतर्क्रियात्मक संबंध से जुड़ी हैं। यही अंतर्क्रियात्मक पर्यावरण मानव के अस्तित्व और जीवन का आधार है।

वर्तमान में मानव और प्रकृति के बीच की अंतर्क्रिया इतनी व्यापक हो गई है कि इससे सारी मानव-जाति को प्रभावित करने वाला प्रश्न पैदा हो गया है। आधुनिक पारिस्थितिकी अनुसंधान से ज्ञात होता है कि जैव मंडल पर मनुष्य के निरंतर, एक तरफा और बहुत हद तक अनियंत्रित प्रभाव से हमारी विकासशील मानव सभ्यता एक ऐसी सभ्यता में बदल रही है जो मरुद्यानों के स्थान पर रेगिस्तानों को स्थापित कर रही है। परिणामस्वरूप पृथ्वी पर सभी जीवों के विनाश का भय पैदा हो रहा है। पारिस्थितिकी संकट के कारणों को मोटे तौर पर पांच वर्गों में बांट सकते हैं—(1) तीव्र औद्योगिक विकास, (2) तीव्र जनसंख्या वृद्धि, (3) अधिक तकनीकीकरण, (4) असीमित खनन और (5) अनियोजित विकास। इन कारकों से जो समस्याएं उत्पन्न हुई हैं, उनमें वनाच्छादित क्षेत्रों का कम होना, भूमि तथा जल का अम्लीकरण होना, औद्योगिक अवशेषों का बढ़ना जिनमें कुछ अत्यंत जहरीले पदार्थ भी मिले होते हैं, वायु, समुद्र तथा भूमि में प्रदूषण, परंपरागत ईंधन का बड़ी मात्रा में जलाया जाना जिसके परिणामस्वरूप पृथ्वी के तापमान में वृद्धि और बदलाव आने की संभावना पैदा करने वाले कार्बन-डाई-आक्साइड के सांद्रण में वृद्धि होना मुख्य हैं।

विश्व के मौसम में उलट फेर

मनुष्य अपने संपूर्ण सामाजिक इतिहास में प्रकृति के साथ अपने संबंधों में परिवर्तन करता रहा है। प्रारंभ में प्रकृति के प्रति मनुष्य और समाज का दृष्टिकोण पूर्णत: उपभोक्ता का था, किंतु बाद में उपयोग बढ़ने से यह भिन्न रूप ग्रहण करने लगा। प्रकृति द्वारा प्रदत्त संसाधनों का न केवल उपयोग किया गया अपितु उसका परिष्कार भी किया गया। उसी क्षण से प्रकृति के साथ उपभोक्ता संबंधों के स्थान पर प्रकृति पर प्रभुत्व जमाने तथा प्राकृतिक संसाधनों का व्यापक रूप से दोहन करने का दृष्टिकोण प्रतिस्थापित होने लगा। भोगवादी तथा व्यावसायिक प्रकृति होने से मानव तथा प्रकृति के मधुर संबंधों में परिवर्तन होने लगा। मनुष्य ने विज्ञान तथा तकनीक के सहारे, बढ़ती जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति के सभी संसाधनों का दुरुपयोग करके और प्रकृति के नियमों का उल्लंघन करके अपने लिए विकट समस्याएं उत्पन्न कर ली हैं। प्रकृति के अत्यधिक शोषण के परिणामस्वरूप जातियों के विलुप्तीकरण की दर बढ़ी जो नई जातियों के क्रमिक विकास की दर की अपेक्षा बहुत अधिक है। पिछले 2000 वर्षों में जो जातियां विलुप्त हुई हैं, उनमें आधे से अधिक जातियां सन् 1900 के बाद विलुप्त हुई हैं। जैविक-विदों की मान्यता है कि पिछले 350 वर्षों में 19वीं शताब्दी के मध्य तक प्रति दस वर्ष में प्राणियों की एक जाति या उपजाति नष्ट हुई है। यदि पूरी दुनिया की आयु को हम 5 अरब वर्ष माने और उसे 24 घंटे में सीमित कर दें, तो अभी मानव जाति को इस दुनिया में पैदा हुए मात्र दो सेकेंड का समय हुआ है। इस अवधि में अनेक जीव प्रजातियां इस दुनिया में पैदा हुईं किंतु जलवायु परिवर्तन के कारण अनेक जातियों का मूल समाप्त हो गया। यदि भविष्य में इसी तरह से जलवायु परिवर्तन होता रहा तो मानव जाति सहित अनेक प्रजातियों के लुप्त होने का भय है। वर्ष (1997-98) से पूरे विश्व के मौसम में जबरदस्त उलट-फेर हो रहे हैं। ठंड के दिनों में वर्षा हो रही है, तो वर्षाकाल में तापमान में वृद्धि हो रही है। मौसम-विभाग के वैज्ञानिकों

*भूगोल विभाग, स्नातकोत्तर अध्ययन एवं शोध केंद्र, शासकीय स्वशासी महाविद्यालय, अम्बिकापुर (म.प्र.)

के अनुसार एलनिनों के प्रभाव से संसार में जलवायु परिवर्तन के संकेत मिल रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप कहीं अतिवृष्टि, तो कहीं सूखे का प्रकोप देखा जाएगा। एलनिनों वस्तुत: पर्यावरण प्रदूषण तथा ग्रीन हाऊस गैसों के दुष्प्रभावों के कारण अपना यह रूप दिखा रहा है।

प्रकृति में फेर बदल से पर्यावरण संकट

आज से कई दशक पूर्व फ्रेडरिक एंजेल्स ने आगाह किया था कि "हमें प्रकृति पर अपनी मानवीय विजयों के कारण आत्म-प्रशंसा में विभोर नहीं हो जाना चाहिए क्योंकि वह हर ऐसी विजय का हमसे प्रतिशोध लेती है। यह सही है कि प्रत्येक विजय से पहले तो वही परिणाम प्राप्त होते हैं जिनका हमने भरोसा किया था। पर बाद में उसके पूर्णत: भिन्न तथा अप्रत्याशित परिणाम प्राप्त होते हैं जिनसे अक्सर पहले परिणाम का असर जाता रहता है।" इस प्रकार कहा जा सकता है कि अविच्छिन्न वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति से मनुष्य को प्रकृति पर अभूतपूर्व अधिकार मिलने से और बगैर सोचे-समझे, उसमें बड़े-बड़े फेर बदल करने से पर्यावरण संकट गहराता जा रहा है और संपूर्ण मानवता के लिए प्रश्न-चिन्ह बनता जा रहा है। प्रदूषण, प्राकृतिक प्रकोपों तथा विविध सांस्कृतिक समस्याओं से घिरा मानव समाज भविष्य के प्रति चिंतित हो रहा है। यहां तक कहा जा सकता है कि यदि यही रवैया बना रहा तो पृथ्वी जीवन-विहीन हो सकती है। ओजोन गैस के आवरण की जहरीली गैसों से इतनी क्षति हो जाएगी कि सूर्य की पराबैंगनी किरणों का प्रकोप पृथ्वी तल पर बढ़ जाएगा और अंधापन, चर्मरोग, कैंसर, सूक्ष्म जीवों का विनाश और यहां तक कि जीवों के आनुवांशिक गुणों में परिवर्तन हो सकता है। इससे मौसम और जलवायु के स्वभाव में इतना परिवर्तन आ सकता है कि बाढ़ और सूखे के प्रकोप से जन-धन की अपार क्षति हो सकती है। वास्तविकता यह है कि हम केवल वर्तमान तक सीमित हैं, भूतकालीन अनुभवों से न हम शिक्षा लेना चाहते हैं और न भविष्य के प्रति जागरूक हैं। यदि ऐसा न होता तो यह स्थिति कदापि नहीं आती जो आज हमें डरा रही है। अत: मानव के भविष्य की संभावनाओं पर विचार किया जाना आवश्यक है।

समस्याएं और समाधान

भूतल पर अन्य जीवधारियों की अपेक्षा मानव, पर्यावरण का सबसे गतिशील कारक है। यदि वह पर्यावरण में परिवर्तन कर सकता है, तो अपने बुद्धि तथा विवेक की क्षमता से उस पर नियंत्रण भी रख सकता है। अत: आज जो पर्यावरणीय समस्याएं उपस्थित हुई हैं, उनका समाधान ढूंढा जा सकता है, लेकिन प्रश्न है समस्या बोध का। यदि निम्नलिखित तथ्यों और समस्याओं का समाधान ढूंढने में सफलता मिलती है तो संभव है कि मानव का भविष्य उज्जवल होगा:

- प्रकृति के साथ संवेदनशील संबंधों का विकास किया जाना चाहिए अर्थात प्रकृति को मां के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए।
- पर्यावरण के अनुरूप तकनीकों का विकास किया जाना चाहिए।
- संसाधनों की गुणवत्ता और भंडार के अनुरूप प्रयोग अर्थात संवर्धन तथा संरक्षणयुक्त विदोहन की नीति होनी चाहिए।
- बढ़ती जनसंख्या पर यथासंभव नियंत्रण रखा जाना आवश्यक है जिसके लिए परिवार कल्याण के प्रति नवचेतना का जागरण जरूरी है।
- प्रौद्योगिकी में सुधार ताकि प्रदूषण को कम किया जा सके। इसके लिए अपशिष्टों की पुनर्चक्रण विधि को अपनाया जाए।
- नगरीकरण की बढ़ती प्रवृत्ति पर अंकुश तथा 'गार्डेन सिटी' को प्रश्रय दिया जाना चाहिए।
- ऊर्जा संसाधनों का संरक्षण और वैकल्पिक (अपरंपरागत) साधनों का विकास। इसके तहत जल, विद्युत, सौर ऊर्जा, बायो गैस आदि साधनों को बढ़ावा देना चाहिए।
- पूंजीवादी उत्पादक पद्धति अराजक तथा प्रकृति शोषक है। अत: प्रकृति के संरक्षण और विवेकपूर्ण उपयोग को सुनिश्चित करने के लिए समाजवादी दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए।
- भौतिकवादी जीवन पद्धति में सुधार लाना चाहिए।
- वसुधैव कुटुंबकम की भावना का विस्तार किया जाना चाहिए जिससे मानवता के प्रति दायित्व में सुधार लाया जा सके।

उक्त कार्यक्रम को यदि पूर्ण रूप से क्रियान्वित किया जाए तो हम इस पृथ्वी की रक्षा कर सकते हैं, अन्यथा जीव जगत का गौरव प्राप्त करने वाला यह एकमात्र ग्रह भी सौरमंडल के अन्य ग्रहों की भांति सुनसान और वीरान हो जाएगा। ❑

गौर करें

डा. सेवा नन्दवाल

आओ पर्यावरण हरा करें
इस बात पर जरा गौर करें।

वह दिन कैसा अद्भुत होगा
पक्षी न चहचहा पाएंगे
आंखें तरसेंगी हरियाली को
पत्ते भी नजर न आएंगे।

नभ का विस्तृत सूनापन
जब आंखों में उतर आएगा
अपनी करनी पर मानव
शायद उस दिन पछताएगा।

प्रकृति संग क्यों बुरा करें?
आओ पर्यावरण हरा करें।

पिकनिक कहां पर तब होगी
सावन में झूले कहां बंध पाएंगे
मन ऊब उठेगा भगदड़ से
इस तन को कहां ले जाएंगे?

जब शुद्ध हवा के मिलने के
आसार खत्म हो जाएंगे
घुट-घुट कर जहर पीने के
और भला क्या कर पाएंगे?

जख्मों को अधिक न गहरा करें
आओ पर्यावरण हरा करें। ❑

गांवों में प्रदूषण : समस्या और समाधान

डा. विमला उपाध्याय*

मनुष्य का जीवन आधारित है—हवा, पानी और प्रकृति पर। कुछ क्षण के लिए हवा न मिले, तो प्राण संकट में पड़ जाते हैं। कुछ दिन पानी नहीं मिले, तो शरीर साथ छोड़ने लगता है। प्रकृति तो दोनों की ही जननी है। प्रकृति के अंतर्गत आते हैं—वन, वातावरण, नदियां, सरोवर, पर्वत आदि। सच पूछिए तो प्रकृति के पांच तत्वों (पृथ्वी, जल, आग, आकाश और हवा) से यह शरीर बना है। इनमें किसी तत्व की अधिकता या न्यूनता से शरीर पर विपरीत प्रभाव पड़ने लगता है। मनुष्य अंत में इन पंचमहाभूतों (पांच तत्वों) में विलीन हो जाता है। जहां से आया है, वहीं चला जाता है। जहां प्रकृति के साथ खिलवाड़ हुआ, उसके साथ अन्याय हुआ नहीं कि पर्यावरण बिगड़ने लगता है। जल दूषित हो जाता है। हवा में रोगाणु तैरने लगते हैं और मनुष्य का जीवन संकटमय हो जाता है। शहरों, महानगरों में बड़े-बड़े कल-कारखाने हैं, धमन भट्ठियां हैं जिसके कारण वहां का कूड़ा-कचरा बाहर फेंका जाता है, नदियों में बहाया जाता है। चिमनियों से ढेर-सा कार्बन-डाय-आक्साइड तथा अन्य प्राण घातक गैसें वातावरण में मिलती हैं। परंतु चिंताजनक बात यह है कि गांव भी प्रदूषण की दानवी लीला से नहीं बचे हैं। गांव के पास प्रकृति का अक्षय कोष है, उसकी कृपा है, परंतु अज्ञानता, विवशता और अदूरदर्शिता के कारण न तो वह स्वच्छ रह पाता है, न प्रकृति के दान को अपने विकास में ला पाता है। अत: यह आवश्यक है कि भारत में फैले लगभग पांच लाख गांवों तथा वहां बसी आबादी के 74 प्रतिशत लोगों को प्रदूषण की स्थितियों, समस्याओं तथा उससे निबटने के उपाय बताए जाएं।

गांवों में प्रदूषण के कारण

गुर्नार मिरडल ने अपनी पुस्तक *एशियन ड्रामा* में इस बात पर बार-बार बल दिया है कि अर्द्धविकसित देश की विशेषता है—उसका पिछड़ापन। कारण है, अज्ञनता और निर्धनता। वे जानते नहीं हैं कि स्वच्छ कैसे रहा जाए। पर्यावरण को शुद्ध कैसे बनाया जाए और इतनी अज्ञानता है कि जलावन के लिए पेड़ काट लिया; शाल-शीशम के जवान होते पौधे को घर के काम के लिए काट लिया; गोबर को खाद, बायो गैस में प्रयोग करने के बजाय उससे गोयंठा (उपले) बनाकर जलावन का काम ले लिया, मवेशी को घर के बाहर गुहाल बनाकर रखने के बजाय अपने घर के आंगन से सटे कमरे में रख लिया; गोबर, मूत्र, फालतू चारे, कचरे को गड्ढे बनाकर डालने की जगह आंगन या पिछवाड़े में ढेर लगा दिया, वह सड़ने लगा, मच्छर फैलने लगा तथा अन्य रोगाणु ग्रामीणों पर आक्रमण करने लगे।

गांवों में शौचालय बनाने का रिवाज नहीं है। हाल के सर्वेक्षणों से पता चलता है कि 0.05 प्रतिशत गांवों में ही सेप्टिक और सुलभ शौचालय की व्यवस्था है। वहां की अज्ञानता का सबसे ज्वलंत प्रमाण है कि वे अपनी गंदगी—थूक-खंखार, बलगम, मल-मूत्र से लेकर कूड़े-कचरे तक को अपने पास से थोड़ी दूर हटा देना ही स्वच्छता मानते हैं। सोने के कमरे की दीवार पर पान की पीक, थूक-खंखार फेंकना सामान्य बात है। आंगन में मूत्र-त्याग और घर के पिछवाड़े गली, खुली जगह या बारी (घर से सटी जमीन का टुकड़ा जहां सब्जी उपजाई जाती है) में मल-त्याग होता है। कुंएं के जगत (प्लेट फार्म) पर कूड़े का अंबार रहता है। बच्चों को पखाना वहीं कराया जाता है। बची-खुची, सड़ी-गली खाद्य सामग्री वहीं पड़ी रहती है, मानो वह कुंएं का जगत न होकर कूड़ादान हो।

प्राचीन काल में गोचर भूमि छोड़ने का रिवाज था। गांवों में ऐसी जमीन सार्वजनिक रूप से छोड़ी जाती थी, जहां मवेशी चर सकें। वहां घास-ही-घास रहती थी। वहां खेती नहीं की जाती थी। इससे दो लाभ थे—(क) मवेशी को हरा और मौसमी चारा मिलता था और घूमने-फिरने से उसका स्वास्थ्य ठीक रहता था। (ख) खुली जमीन के कारण वातावरण खुला रहता था और पर्यावरण में आक्सीजन की अधिकता रहती थी। अब गोचर भूमि पर खेती होने लगी या घर बना लिया गया। फलत: न मवेशी को चरने का सुख मिला, न वातावरण को शुद्ध रखने का अवसर। अब घर के आस-पास जो भी जमीन गौसाड़ (गोचर का ही बिगड़ा रूप) है, वहां मर्द-औरत मल त्याग करते हैं, जिससे आस-पास दुर्गंध फैली रहती है।

बेतरतीब मकान और नाली की कुव्यवस्था

मकानों को एक किनारे अंतराल देकर नहीं बनाया जाता। एक मकान का अगला भाग (मुख्य प्रवेश) दूसरे मकान का पिछवाड़ा है। पिछवाड़े का अर्थ है—कूड़े-कचरे के ढेर लगाने की सुरक्षित जगह और नाली की जगह। घर के पिछवाड़े में एक गड्ढे में पानी जमा होता है, जो आस-पास बिखर जाता है। एक व्यक्ति का गड्ढा दूसरे व्यक्ति के घर के ठीक सामने पड़ता है।

कुंएं या तो कच्चे हैं या जगत ऐसा बना है कि बर्तन अथवा कपड़े धोने के लिए प्रयोग किया गया पानी फिर कुंएं में चला जाता है। कुंएं के आस-पास भी सफाई का प्रबंध नहीं है।

*प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, एस.एस.एल.एन.टी., पी.जी. महिला महाविद्यालय, धनबाद, बिहार

रसोई के ईंधन की पारंपरिक व्यवस्था

गैस, सौर ऊर्जा और विद्युत के इस युग में गांवों के लोग लकड़ी जलाकर या गोयंठे (उपले) से खाना बनाते हैं। इससे धुआं फैलता है। खाना बनाने वाले की आंखों और फेफड़ों पर घातक प्रभाव पड़ता है। रसोईघर में न तो खिड़की होती है, न ही रोशनदान। दम घुटता रहता है। लकड़ी की आपूर्ति के लिए वृक्ष कटते रहते हैं। गोबर के गोयंठे (उपले) जला देने से न गोबर गैस बन पाती है, न खाद। जलावन की वैकल्पिक व्यवस्था स्वच्छता और खाद दोनों के लिए जरूरी है।

प्रदूषण रोकने के कारगर उपाय

महात्मा गांधी कहा करते थे कि स्वच्छता तथा शुद्धता ईश्वर का दूसरा नाम है। तन की शुद्धता वातावरण की शुद्धता से प्रभावित होती है। वातावरण शुद्ध, तो तन शुद्ध। तन शुद्ध, तो मन शुद्ध और मन ही सारे क्रियाकलापों, योजना-प्रकल्पों का कारण होता है। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि प्रदूषण पर अंकुश हो और स्वच्छता तथा शुद्धता पर बल दिया जाए। इसके लिए पहला कारगर कदम है—ग्रामीण मानसिकता का प्रक्षालन।

स्वच्छता अभियान हो या पर्यावरण को शुद्ध रखने की मुहिम या स्वास्थ्य अभियान—गांववासियों को समझाया जाए कि स्वास्थ्य के लिए क्या-क्या शर्तें हैं और उनमें अपनी तथा आस-पास की स्वच्छता की कितनी अहम् भूमिका है? उनकी गंदी आदतें क्या हैं? कौन-से बाधक तत्व हैं, जिनके कारण वे अक्सर बीमार रहते हैं, बच्चों के पेट बड़े हो जाते हैं या पीलापन छा जाता है। अतिसार, बदहजमी आदि आम बातें हैं। कोई मलेरिया से पीड़ित है, तो कोई कालाजार से। इसके लिए एक जागरूकता पैदा की जाए। स्वास्थ्य-सफाई के लिए चेतना पैदा हो। कैंप लगाए जाएं, उचित प्रशिक्षण दिया जाए। सबसे जरूरी है कि कहने, उपदेश देने के बजाय करके दिखाया जाए। एक-एक गली-मुहल्ले में सफाई-अभियान का बिगुल बजाया जाए। ग्रामवासी आश्चर्य से देखते रह जाएं और सेवा दल आस-पास का कूड़ा-कचरा साफ कर, बंधे पानी, नाली, तालाब आदि (जहां मच्छर के अंडे देने की संभावना है) में डी.डी.टी., मच्छरनाशक डालकर चले जाएं और दिखा दें कि उनकी गंदगी, सेवा दल साफ कर सकता है। सफाई करना लज्जा की नहीं, गौरव की बात है। इसका अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। गांधी स्वयं पखाना साफ करने लगते थे। लोगों के दिलों पर इसका प्रभाव पड़ता था।

इसके अलावा प्रदूषण रोकने के लिए ग्रामीणों को गृह-निर्माण, पशुपालन और कृषि के समय उन्हें इन बिंदुओं पर भी ध्यान देना चाहिए :

- घर योजनानुसार बनाएं, जहां पर्याप्त हवा और रोशनी का प्रबंध रहे, पानी निकलने की समुचित व्यवस्था हो। पानी कहीं जमे नहीं, सड़कर रोग पैदा न करे।
- पशुओं के रखने के लिए गुहाल और बथान घर से दूर बनाएं। उसकी फर्श कभी कच्ची नहीं हो। उसे ईंट के टुकड़े को बिछाकर बनाया जाए। वह समतल तथा ढलान वाली हो ताकि मवेशी का मूत्र आसानी से बह जाए। कूड़ा-कचरा वहां जमा न किया जाए बल्कि बारी या खेत में चार फीट लंबा, चार फीट चौड़ा तथा उतना ही गहरा गड्ढा बनाकर डाला जाए। गड्ढा भर जाए तो मिट्टी से ढक दें। फिर दो महीने के बाद सड़कर वह अच्छी खाद बन जाएगा। इससे गंदगी से बचाव होगा और खाद भी मिलेगी।
- सेप्टिक शौचालय न बन पाएं, तो टाट-बोरे से घेरकर बांस से आकार देकर, गड्ढा खोदकर, सुलभ शौचालय का निर्माण किया जाए ताकि ग्रामीण लोग खेत में, बारी में या पिछवाड़े में मल-त्याग न करें। सेप्टिक शौचालय बनाने के लिए ग्रामीणों को सरकारी अनुदान भी दिया जाए।
- लकड़ी, गोयंठा (उपले) न जलाकर गोबर गैस, कोयला जलाकर खाना पकाएं। पारंपरिक व्यवस्था से आधुनिक व्यवस्था की ओर प्रयास हो। कुंएं का निर्माण पाट (मिट्टी से बना तथा पकाया हुआ गोल घेरा) से करें तथा दो पाटों को सीमेंट से जोड़ें, जिससे बाहरी पानी कुएं में न गिरे। कुंएं का जगत पक्का हो और आस-पास कोई पानी का गड्ढा और गंदगी न हो।
- नाली की समुचित व्यवस्था हो। नाली कच्ची ही खोदी जाए और मिट्टी की पकी पाइप से नाली बनाई जाए। उस पर इतनी मिट्टी हो कि पहिए के भार से वह भीतर टूटने न पाए। इससे कम खर्च में नाली का काम मजे में होगा।
- पेड़ काटने के बजाए लगाने पर बल हो। प्रत्येक सदस्य प्रतिवर्ष पांच पेड़ लगाएं। घर, आंगन, पिछवाड़े में तुलसी, फूल के पौधे, मीठी नीम, सब्जी के पौधे लगाए जाएं। इससे वातावरण शुद्ध होगा। हरी और ताजा सब्जी भी मिलेगी। सृजनशीलता को भी प्रोत्साहन मिलेगा।

निष्कर्ष

प्रदूषण हटाने तथा स्वच्छता-शुद्धता का वातावरण बनाने के लिए वन विभाग, सब्जी विभाग, स्वास्थ्य विभाग, ग्रामीण अभियंत्रण विभाग, कल्याण विभाग तथा जनसंपर्क विभाग से ग्रामवासी संपर्क तथा समन्वय करें, सरकारी सहायता प्राप्त करें और यह संकल्प लें कि हम अपना गांव हर प्रकार से साफ-सुथरा रखेंगे। भारत के सर्वांगीण विकास का अर्थ है—गांवों का विकास और उस विकास का मूलाधार है—स्वच्छता, शुद्धता। इसी संकल्प तथा तदनुसार कार्यान्वयन से सर्वोदय तथा रामराज्य का स्वप्न चरितार्थ हो सकेगा। ❑

न उधार दो, न उधार लो क्योंकि उधार देने से अक्सर पैसा और मित्र दोनों ही खो जाते हैं और उधार लेने से सारी किफायत कुंठित हो जाती है।

—शेक्सपियर

नदियां : स्वच्छधारा क्यों बनी विष की धारा

राजेन्द्र कुमार राय

देश की राजधानी दिल्ली को साल भर पीने का पानी मुहैया कराने वाली नदी यमुना के पानी की जांच करने के बाद वैज्ञानिकों ने जो रिपोर्ट दी है, वह रोंगटे खड़े कर देने वाली है। वजीराबाद से ओखला के बीच पानी की जांच के बाद वैज्ञानिकों ने पाया कि यमुना के जल में कई जगह आक्सीजन है ही नहीं, जबकि प्रति लीटर पानी में कम-से-कम 5 मिलीग्राम आक्सीजन की मात्रा होनी चाहिए। इससे कम आक्सीजन में जीव-जंतु जिंदा नहीं रह सकते। करीब डेढ़ वर्ष पूर्व लाखों मछलियां यमुना के इस क्षेत्र में मृत पाई गई थीं।

यमुना के पानी की एक अन्य जांच में पाया गया कि इसके सौ मिली लीटर पानी (यानी चाय के एक कप जितने पानी में) दस लाख जीवाणु पाए गए। ऐसा पानी इंसान के पीने लायक नहीं होता। आज यमुना का जल इतना प्रदूषित हो गया है कि उसमें जीवाणुओं की संख्या सुरक्षित स्तर से 20 हजार गुना तक बढ़ गई है। जिस नदी में मात्र स्नान करने से लोगों के पाप धुल जाने की मान्यता रही है, उसमें अब चर्म रोग तथा अन्य जानलेवा बीमारियां होने का खतरा पैदा हो गया है।

अपनी 1,400 किलोमीटर लंबी यात्रा में यमुना शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में मानवीय सभ्यता के विकास की देन के रूप में लगभग 11,000 क्विंटल कचरा लेकर संगम (इलाहाबाद) पहुंचती है। इसमें अकेले ढाई हजार टन कचरा देश की राजधानी दिल्ली में ही गिराया जाता है। दिल्ली के बाद मथुरा तथा आगरा में यमुना काफी प्रदूषित है। वास्तव में हर प्रकार के जल की धारा में स्वयं शुद्धिकरण क्षमता होती है, इसी कारण कोई भी नदी आरंभ से अंत तक एक समान प्रदूषित नहीं रहती।

दिल्ली में यमुना लगभग 22 किलो मीटर लंबी होती हुई बहती है। दिल्ली में रोजाना लगभग 40 करोड़ गैलन गंदगी एकत्र होती है, जिसे 15 बड़े नालों के द्वारा यमुना में गिरा दिया जाता है। अब दिल्ली सरकार इसे नियंत्रित करने की योजना पर कार्य कर रही है। दिल्ली के मुख्यमंत्री साहिब सिंह वर्मा ने एक भेंटवार्ता में बताया कि कुल 300 करोड़ रुपये की लागत से एक योजना तैयार की गई है जिससे दिल्ली से निकलने वाली सारी गंदगी उपचारित करने के बाद ही यमुना में डाली जाएगी। अगर दिल्ली सरकार अपने इस मकसद में कामयाब हो जाती है, तो निश्चय ही यमुना का प्रदूषण कम करने में एक बड़ी सफलता मिलेगी।

यमुना ही क्यों, देश की सारी छोटी-बड़ी नदियों का यही हाल है। वैसे तो हमारे देश में नदियों का जाल बिछा हुआ है। यहां 113 बड़ी नदियां और हजारों सहायक नदियां हैं। नदियों के किनारे देश के लगभग सभी छोटे-बड़े शहर बसे हैं। गंगा और सिंधु नदियों के उपजाऊ मैदान पर ही सिंधु घाटी की सभ्यता का विकास हुआ। दरअसल नदियां हमारी संस्कृति और परंपरा में भी रची-बसी हैं।

विभिन्न पर्व-त्योहारों पर नदियों में नहाने की परंपरा हमारे देश की विशेषता है, लेकिन सारे देश के पापों को कथित रूप से धोने वाली गंगा वास्तव में पर्यावरणीय प्रदूषण के पापों को ढो रही है। इसके किनारे बसे लगभग 1,500 बड़े उद्योगों और हजारों लघु उद्योगों और शहरी जल-मल के जहरीले पानी से गंगा, देश की एक सर्वाधिक प्रदूषित नदी बन गई है। देश भर की नदियों से मछलियों के मरने की खबर बराबर आती रहती है। एक पर्यावरण विशेषज्ञ कहते हैं कि आज जीव-जंतु मर रहे हैं, तो कल क्या हम नहीं मर सकते?

उत्तर प्रदेश के एक बड़े औद्योगिक शहर गाजियाबाद के पास से दिल्ली से सीधे बहने वाली एक नदी 1857 में अंग्रेजों से भारतीयों के संग्राम के दौरान मानव रक्त से लाल हो गई थी जो आज आजादी के पचास वर्ष बाद प्रदूषण के कारण काली हो गई है। दक्षिण की एक प्रसिद्ध नदी कावेरी के बहुत बड़े हिस्से में जल-जीवन समाप्त हो गया है। दामोदर नदी आज विश्व की सर्वाधिक प्रदूषित नदियों में एक है। तुंगभद्रा, कपिला, सोजारी, पैरियर, चालियार, कालू, गोमती, लूनी तथा बांदी का भी यही हाल है। इन नदियों का पानी काला हो गया है। एक बड़ी बात यह भी है कि जब ये नदियां अपना प्रदूषित जल लेकर समुद्र में मिलती हैं, तब वहां भी व्यापक असर पड़ता है और सारा वातावरण संक्रामक बन जाता है।

(शेष पृष्ठ 13 पर)

रमा

ममता

कई बार मन में उठने वाले सवाल सिर्फ अंदर ही अंदर बादलों की तरह उमड़-घुमड़ कर रह जाते हैं। अंतर्द्वंद्व का सिलसिला जीवन के साथ-साथ चलता रहता है लेकिन रमा के साथ रहकर मुझे तीन दिन में ही ऐसा लगा कि भौतिक सुख-सुविधाओं की दुनिया ही सब कुछ नहीं है।

कालेज के दिनों में रमा सबसे अलग दिखाई पड़ती थी। पाश्चात्य सभ्यता के प्रति उसने अपने आप को पूरी तरह समर्पित कर दिया था। दूर से ही लगता था कि किसी संपन्न और सुशिक्षित घराने की लड़की है। बातों ही बातों में वह घंटों गुजार देती। बड़ी मजेदार बातें किया करती थी। फैशन उसका प्रिय विषय था।

कथा, कहानी और उपन्यास से लेकर फिल्म, धर्म, राजनीति और दर्शन आदि पर इस प्रकार धारा-प्रवाह बोलती कि बस सुनने वाला दंग रह जाए। बाहर से बेहद दबंग स्वभाव की रमा अंदर से बिल्कुल मोम की तरह थी। खास-कर दीन-हीनों के प्रति वह असीम दया का भाव रखती थी।

एक बार अपने पर्स से उसने सारे रुपये निकाल कर एक अपाहिज को दे दिए थे और बाद में फीस के लिए उसे उधार लेना पड़ा था। कुल मिलाकर रमा का व्यक्तित्व दोस्ती के लायक था और यही वजह थी कि चार साल तक मेरी उसके साथ पक्की दोस्ती रही। फिर उसके बाद पापा का ट्रांसफर हो गया था और हम अलग-अलग हो गए।

रमा बेहद महत्वाकांक्षी थी लेकिन अनिश्चय और अस्पष्टता से वह घिरी रहती थी। कभी पत्रकारिता उसे अच्छी लगने लगती थी, कभी अध्ययन, तो कभी वह डाक्टर होने का सपना देखती, तो कभी कुछ और। उसे देख कर लगता था कि वह पीछे हटने वाली नहीं है क्योंकि निर्णय लेने में वह जरा भी नहीं हिचकती थी। कभी-कभी तो दूसरी लड़कियां कह भी देती थी कि "रमा सिविल सर्विसेज के कंपटीशन में बैठी नहीं कि फर्स्ट चांस में ही क्लीयर कर लेगी। बस फिर तो यह आई.ए.एस. बनेगी या आई.पी.एस. और मिलने के लिए पर्ची भिजवानी पड़ा करेगी।" लेकिन रमा इन बातों से कभी खुश नहीं होती थी।

वह अक्सर अकेले में मुझसे पूछती कि क्या सिर्फ अपने लिए जीना ही सब कुछ है। मैं उसकी अंतर्वेदना जानती थी। उसके अंदर छटपटाहट किसी नई दिशा की तलाश के लिए थी।

मैं नहीं जानती थी कि वह कुछ तय कर पाएगी अपने कैरियर के वास्ते अथवा नहीं। लेकिन जब से साथ छूटा, जिज्ञासा थी कि रमा कहां है, कैसी है, शादी भी उसने की या नहीं। उसका पता तक नहीं था मेरे पास अन्यथा पत्र-व्यवहार ही चलता रहता।

एक दिन अचानक अखबार में उसका नाम देख कर मैं चौंक गई। थोड़ा पता भी उसमें था। संयोग से कुछ दिनों में ही उधर जाने का प्रोग्राम बन गया। मैंने मौका नहीं छोड़ा। लेकिन जब मैं वहां पहुंची तो उसे देखकर मुझे सहसा अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ।

पहले मोड़ पर जब मैंने उसे देखा था तो एकदम मार्डन लड़की थी, वक्त के साथ अपनी पहचान बनाए रखने वाली एक दबंग लड़की और दूसरे मोड़ पर जब वह मिली तो छप्पर के नीचे बैठी हुई चूल्हे में रोटी सेंक रही थी। उसने बिल्कुल साधारण, ग्रामीण महिलाओं जैसे कपड़े पहन रखे थे। मुझे देखते ही वह पहचान गई। हम दोनों हालांकि पूरे पंद्रह वर्ष बाद मिले थे। वह मेरे गले में बाहें डालकर लता की तरह लिपट गई। "मैं तो सोच रही थी कि तू तो भूल ही गई होगी।" वह बोली, "अचानक तुम आज मिलोगी, चल कर यहां आ जाओगी। सच मैंने पहले कभी सोचा नहीं था।" उसकी खुशी का ठिकाना नहीं था।

वहां उसके घर पर जो भी उपलब्ध था, उसी से उसने बड़े प्यार से और बड़े जोरदार ढंग से मेरा स्वागत किया। उसकी आत्मीयता मेरे मन में गहरे तक उतर गई। बिना मेरे पूछे ही उसने सब कुछ बता दिया। उसके साथ साग के साथ मोटी-मोटी रोटियां खाने में बड़ा मजा आ रहा था।

महानगरीय संस्कृति से ऊबकर वह आदिवासियों के बीच रह रही थी। उनके साथ मिलकर वहां की समस्याओं के लिए लड़ रही थी। यद्यपि पढ़ाई छोड़ने के बाद वह विदेश का चक्कर भी लगा आई थी, किंतु वापस आकर उसने पिछड़े लोगों की एक बस्ती में काम किया। वहीं उसे लगा कि देश के बहुत-से ऐसे कोने हैं, जहां रोशनी की एक बारीक किरण तक ने अभी छुआ नहीं है। उसके विचारों वाला एक युवक मिला और उसने उससे विवाह कर लिया। उसके पति निर्बल वर्ग के अधिकारों के प्रति पहले से ही संघर्ष कर रहे थे। रमा को लगा कि "एक और एक वाकई ग्यारह होते हैं।" वह वनवासियों के एक कबीले में पहुंच गई और वहीं अपनी झोंपड़ी डाल ली, रहने लगी। वहां का हिंदुस्तान बिल्कुल अलग था। न बिजली, न पानी, न सड़क, न स्कूल और न ही अस्पताल।

रमा को कई साल तक वहां जंगल में अजनबी की तरह रहना पड़ा था। पहले वहां के रहने वाले उसे गैर समझते थे। उसकी गतिविधियों पर कड़ी निगाह रखी जाती थी कि कहीं कुछ गड़बड़ करने तो नहीं आई है। एक बार सुना कि उसे विदेशी औरत समझा गया जो धर्म परिवर्तन कराने आई है।

वहां के मुखिया, महाजन सभी को उसने अपने खिलाफ पाया लेकिन उसने हिम्मत नहीं हारी। वह पढ़ी-लिखी थी। उसने चुपचाप विभिन्न विभागों से संपर्क किया। वहां के रहने वाले गरीब मजदूरों का, जंगलात के ठेकेदार खूब शोषण करते थे। उनको उचित मजदूरी दिलाने के लिए लड़ाई लड़ी। लाठी सही, जेल गई, न्यायालय के द्वार पर दस्तक दी, तब कहीं जाकर वहां के रहने वालों ने रमा को अपना माना। उधर उसके पति दूसरे क्षेत्र में किसानों के प्रति उनके बीच काम कर रहे थे। इधर रमा ने उस जंगल में अपना एक छोटा-सा स्कूल और दवाखाना खोल रखा था। वहां की महिलाओं को वह सिलाई वगैरह सिखाती और पढ़ाने की कोशिश करती। उनके बीच रहने के लिए उसने वहां की वेशभूषा, वहां के रहन-सहन, बोल-चाल, रस्मो-रिवाजों को अपनाया, ताकि लोग उस पर विश्वास कर सकें। स्थानीय लोगों को लेकर समिति बनाई गई जिसका मुख्य उद्देश्य था—वहां का समग्र विकास करना।

सबसे पहले रमा ने न्यूनतम मजदूरी के लिए मोर्चा लिया। फिर अनेक बंधुआ मजदूरों को मुक्त कराया। आपसी झगड़े निपटाने के लिए उन्हीं लोगों में से एक को मुखिया बना कर 'पंचायत' करनी शुरू कर दी। अंततः रमा ने उस क्षेत्र में रहने वालों का विश्वास जीत लिया था। रमा को राष्ट्रीय पुरस्कार से सम्मानित किया गया क्योंकि रमा ने देखते ही देखते क्षेत्र की काया पलट दी थी और वह इसी में संतुष्ट थी.....।

जहां अज्ञान का अंधेरा था वहां आज रोशनी है, समझ है, चेतना है.....। किंतु सवाल यह उठ सकता है कि इतने बड़े देश में एक रमा से क्या फर्क पड़ता है लेकिन यह एक सच्ची कहानी है और साथ में यह भी सच है कि यदि एक जिले में एक लड़की भी रमा जैसी निकल आए तो पूरे ग्रामीण भारत की तसवीर बदल सकती है। ❑

(पृष्ठ 11 का शेष) **नदियां : स्वच्छधारा क्यों बनी विष की धारा**

डाउन टू अर्थ के संपादक श्री अनिल अग्रवाल के अनुसार हकीकत में यमुना नदी दिल्ली आते-आते तक विष का काकटेल बन चुकी होती है। हरियाणा के आठ जिलों से यमुना बहती हुई दिल्ली पहुंचती है। यमुना नगर और पानीपत से पश्चिमी यमुना नहर द्वारा प्रतिदिन लगभग 7.15 करोड़ लीटर जहरीला जल यमुना में गिरता है। केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड के अनुसार अपने देश में नदी प्रदूषण केवल 20 प्रतिशत उद्योग-धंधे के कचरे के कारण होता है, शेष 80 प्रतिशत शहरी कचरे के कारण होता है। शहरी कचरे या मल-जल में मुख्य रूप से कार्बनिक पदार्थ होते हैं, जो पानी में मिलने पर आक्सीकृत होते हैं। इस आक्सीकरण की क्रिया में आक्सीजन की बड़ी मात्रा की खपत होती है। अतः पानी आक्सीजन-विहीन हो जाता है। फिर उसमें रहने वाले जीव-जंतुओं का जीना दूभर हो जाता है।

ऐसा नहीं है कि हमारे देश में प्रदूषण के नियंत्रण हेतु कानून नहीं बनाए जाते। जल प्रदूषण को रोकने के लिए सर्वप्रथम 1974 में एक कानून बनाया गया था। आज भी नित्य नए कानून बनाए जा रहे हैं और कठोर कार्यवाइयां की जा रही हैं। उत्तर प्रदेश सरकार ने पिछले दिनों कई दर्जन उद्योगों से कह दिया कि पहले प्रदूषण नियंत्रण यंत्र लगवाओ, फिर कारखाना चलाओ, लेकिन फिर भी यह समस्या कैंसर की तरह बढ़ती चली जा रही है।

वाराणसी में 14 जून 1986 को जिस नाटकीयता के साथ 'गंगा कार्य योजना' की शुरुआत की गई थी, वह एक अनबूझ पहेली बन कर रह गई, क्योंकि गंगा का प्रदूषण तो लगातार बढ़ता गया। केंद्रीय जल आयोग ने अपनी एक रिपोर्ट में कहा है कि अगर शीघ्र ही असरदार कदम नहीं उठाए गए, तो भविष्य में देश को जल प्रदूषण के साथ-साथ पीने के पानी की समस्या से भी जूझना पड़ेगा। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि इस समस्या को रोकने के लिए फौरन कुछ नहीं किया गया तो घरों में पीने का पानी मिलना भी कठिन हो जाएगा। आयोग का मानना है कि बनाए गए नियमों का सख्ती से पालन किया जाना चाहिए, साथ ही लोगों को भी सचेत करना चाहिए कि पर्यावरण को साफ रखने में उनकी भूमिका क्या है? आज यह भी जरूरी हो गया है कि हम अपनी जीवनदायिनी नदियों को बचाएं क्योंकि हमारी सभ्यता इनके किनारे विकसित हुई है और फली-फूली है। ❑

प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वालों के लिए उपयोगी पत्रिका

योजना

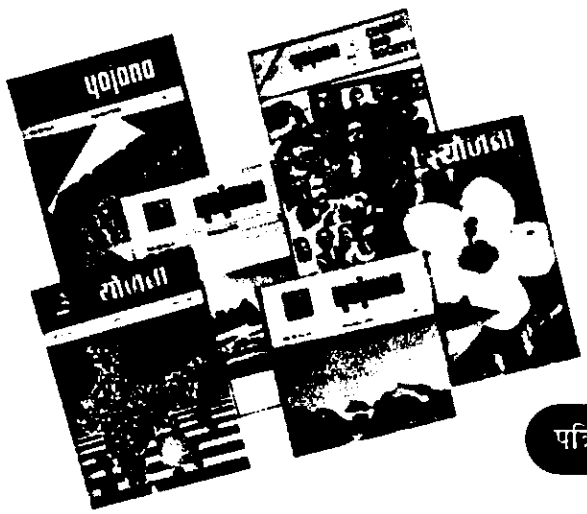

- आर्थिक एवं सामाजिक विषयों की मासिक पत्रिका

योजना में आप पाएंगे :

- अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं पर ज्ञानवर्धक सामग्री विकास तथा योजना प्रक्रिया का गहन एवं विस्तृत विश्लेषण
- पर्यावरण, साक्षरता, विज्ञान एवं टेक्नोलौजी और पर्यटन जैसे आर्थिक-सामाजिक विषयों पर विशेषज्ञों द्वारा लिखित सारगर्भित लेख
- विभिन्न विकास योजनाओं की जानकारी

पत्रिका आज ही खरीदिए अथवा नियमित ग्राहक बनिए

योजना की विषय सामग्री का चयन प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वाले युवाओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है जो उनकी सफलता में सहायक हो सकती है।

(*योजना* अंग्रेजी, उर्दू, असमिया, बंगला, गुजराती, कन्नड़, मराठी, मलयालम, उड़िया, पंजाबी, तेलुगु और तमिल में भी निकलती है)

मूल्य : एक प्रति 5/- रु.

चंदे की दरें : ☐ एक वर्ष : 50 रु. ☐ दो वर्ष : 95 रु.
☐ तीन वर्ष : 135 रु.

मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/ पोस्टल आर्डर निम्न पते पर भेजें :

सहायक व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार)
पूर्वी ब्लाक-4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066
दूरभाष : 6105590

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

☐ पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली-110001 ☐ सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001 ☐ हाल नं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 ☐ कामर्स हाउस, करीम भाई रोड, बालार्ड पायर, मुंबई-400038 ☐ 8-एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069 ☐ राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चेन्नई-600009 ☐ बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004 ☐ प्रेस रोड, तिरुअनंतपुरम-695001 ☐ 27/6, राममोहन राय मार्ग, लखनऊ-226019 ☐ राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500001 ☐ प्रथम तल, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलौर-560034

विक्रय केंद्र ● पत्र सूचना कार्यालय

☐ सी.जी.ओ. काम्पलैक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड, इंदौर (म.प्र.) ☐ 80, मालवीय नगर, भोपाल-462003 ☐ के-21, नन्द निकेतन, मालवीय मार्ग, 'सी' स्कीम, जयपुर-302001

बेरोजगारी का आसान समाधान : पशुपालन

डा. डी.डी. शुक्ला*

देश में बढ़ती बेरोजगारी के समाधान के लिए सरकार ने शिक्षा से जुड़े व्यावसायिक पाठ्यक्रम प्रारंभ किए हैं जिनमें पढ़-लिखकर आज का नवयुवक रोजगार ढूंढ सकता है। हमारे देश की अर्थ-व्यवस्था कृषि प्रधान है जो श्रम-साध्य है। लेकिन आज का नवयुवक श्रम से दूर भागना चाहता है। वह पढ़-लिखकर नौकरी की तलाश में निकल पड़ता है। यदि वह इस मानसिकता को समाप्त कर श्रम साध्य व्यवसाय, कृषि अथवा पशुपालन करे, तो बेरोजगारी की समस्या हल हो सकती है।

पशुपालन व्यवसाय से आय में निश्चय ही वृद्धि होती है, बशर्ते कि इसे अच्छे ढंग से किया जाए। शिक्षित बेरोजगार तो आधुनिक तकनीकी तरीके अपनाकर इससे और ज्यादा लाभ कमा सकते हैं।

पशुपालन व्यवसाय को प्रोत्साहन तथा बेरोजगारों को रोजगार प्रदान करने की दृष्टि से सरकार द्वारा विभिन्न योजनाओं के लिए बैंक ऋण तथा अनुदान राशि की सहायता दी जा रही है जिससे पशुपालन का लाभ, गरीबी की रेखा के नीचे जीवन-यापन करने वाले लोगों तथा शिक्षित बेरोजगारों को दिया जा रहा है। इन योजनाओं के माध्यम से ये लोग निश्चित रूप से अच्छी कमाई कर रहे हैं। ग्रामीण अंचलों में रहने वाले श्रम साध्य लोग शहरी क्षेत्रों में आकर, जहां पशु उत्पाद की खपत ज्यादा है, पशुपालन व्यवसाय कर रहे हैं और शहरी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों को दुग्ध तथा अन्य पशु उत्पाद उपलब्ध कराकर धन अर्जित कर रहे हैं। बढ़ती जनसंख्या के कारण पशु उत्पाद की खपत दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है, जिससे साबित होता है कि पशुपालन व्यवसाय का भविष्य अच्छा है।

दुधारू पशुपालन

बेरोजगारों के लिये यह एक बेहतर रोजगार है, जिसके माध्यम से दूध बेचकर तथा दूध से निर्मित पदार्थ तैयार कर वे अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं। दुधारू पशुपालन का व्यवसाय शिक्षित लोगों द्वारा अच्छे ढंग से किया जा रहा है। इस व्यवसाय के लोग दुग्ध तथा दुग्ध निर्मित वस्तुओं को अच्छी दरों पर बेचकर प्रतिमाह अच्छी रकम अर्जित करते हैं जो एक नौकरी-पेशा व्यक्ति से कहीं ज्यादा होती है।

सरकार द्वारा प्रधानमंत्री रोजगार योजना के तहत दुधारू पशुपालन हेतु अनुदान का प्रावधान रखा गया है जिससे शिक्षित बेरोजगारों को लाभ उठाना चाहिए। उदाहरण के लिए—यदि एक भैंस जिसकी कीमत 15,000 रुपये है और वह लगभग 10 लीटर दूध प्रतिदिन देती है। तो एक माह में 300 लीटर दूध होता है जिसकी कीमत 14 रुपये प्रति लीटर की दर से 4,200 रुपये होते हैं। यदि माना जाए कि उसकी खुराक में आधा पैसा खर्च हुआ, तो 2,100 रुपये प्रतिमाह फायदा होता है। 2,100 रुपये प्रतिमाह की दर से 10 माह तक प्रतिमाह दूध देने पर 21,000 रुपये होते हैं जिसमें भैंस की कीमत निकाल दी जाए तो 6,000 रुपये बच भी जाते हैं। यदि तकनीकी ढंग से संतुलित आहार व्यवस्था, समयानुसार गर्भाधान, टीकाकरण व्यवस्था रही तो निश्चय ही पशुपालक को फायदा होगा। इससे स्पष्ट है कि 500 रुपये की नौकरी के बजाय पशु पालन व्यवसाय ज्यादा बेहतर है, जिसे यदि बड़े पैमाने पर किया जाए तो अधिक लाभ होगा।

बकरी पालन

बकरी पालन व्यवसाय एक अहम भूमिका रखता है। इससे दूध तथा मांसाहारी लोगों के लिए मांस भी प्राप्त होता है। बकरियों का वर्ष में दो बार प्रजनन होता है और एक बकरी अक्सर दो बच्चों को जन्म देती है। इस प्रकार इनकी संतति में वृद्धि बहुत जल्दी होती है और यह गरीब तबके के लोगों के लिए गाय के समान है जो कम खर्च में अधिक दूध देती है। बड़े पैमाने पर इसका व्यवसाय कर बकरी पालन से अच्छी रकम अर्जित की जा सकती है।

भेड़ पालन

भेड़ को 'विशेष तबके के लोगों के लिए धन' के नाम से जाना जाता है। भेड़ पालन का व्यवसाय भी सरकार द्वारा ऋण तथा अनुदान की सहायता से प्रोत्साहित किया जा रहा है। 5 एकड़ से कम भूमि वाले छोटे किसान भी एक-तिहाई और दो-तिहाई अनुदान राशि तथा ऋण बैंक की

*पशु चिकित्सा सहायक, शल्यज्ञ, छतरपुर, म.प्र.

(शेष पृष्ठ 19 पर)

ग्रामीण परिवेश के संदर्भ में

पर्यावरण प्रबंधन की समस्याएं

मनभरन प्रसाद द्विवेदी *
ई. रमाकान्त त्रिपाठी *

जिस प्रकार मानव-शरीर में प्रत्येक अंग एक-दूसरे पर निर्भर है, ठीक उसी प्रकार प्रकृति के जीव-जंतु, पशु-पक्षी तथा पेड़-पौधे भी एक-दूसरे पर निर्भर हैं। जब कभी यह संतुलन बिगड़ता है, तभी समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

प्रारंभ से ही कृषि प्रधान देश होने के कारण वनों का भारतीय समाज से अनन्य संबंध रहा है। भारतीय ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में प्रारंभ से ही वनों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। ऋषि-मुनियों से लेकर नृपों, सामंतों तक ही नहीं, वरन् आधुनिक समाज तक में वनों के महत्व को समझा जाता रहा है। दुर्लभ एवं अत्यावश्यक वृक्षों यथा—पीपल, महुआ, नीम, तुलसी, आंवला, चंदन, बरगद आदि वृक्षों को शीर्ष पर रखा गया। वनों का संबंध मनुष्य से इतना मधुर रहा है कि वनों से मनुष्य का मां-बेटे सा संबंध हो गया। परंतु एक समय ऐसा भी आया, जब पुत्र ने अज्ञानतावश या लाभ से अभिभूत होकर वन रूपी मां पर ही प्रहार करना शुरू कर दिया। फलस्वरूप एक लंबे अंतराल के पश्चात यह प्रश्न हवा में लटक गया है कि जब वन रूपी मां का अस्तित्व नहीं रहे तो उस पर आश्रित पुत्र की रक्षा कैसे हो।

पर्यावरण जागरूकता

आज पर्यावरण-जागरूकता भारत में ही नहीं, बल्कि दुनिया भर में तेजी से व्याप्त हो रही है तथा सरकार भी इस कार्यक्रम में रुचि ले रही है। वन-संरक्षण की दिशा में राष्ट्रीय स्तर पर प्रयास आरंभ किए गए हैं। वन रोपण के अंतर्गत 'वानिकी' कार्यक्रम चलाया जा रहा है जिसका उद्देश्य गांव वालों को प्रोत्साहित कर तथा अनुदान देकर उन्हें आत्मनिर्भर बनाना तथा वातावरण के संरक्षण में मदद करना है।

वानिकी की विसंगतियां तो देखिए? वानिकी के नाम पर सरकारी उपक्रम के अंतर्गत रेल-पटरियों के किनारे या राजमार्गों के दोनों ओर पौधे रोपे जाते हैं, मगर कौन-से पौधे? वे पौधे नहीं, जो आगे चलकर घनी-शीतल छाया, ईंधन और सजावटी लकड़ी दें,बल्कि नीलगिरि या सफेदा, चीड़ के वृक्ष जो तात्कालिक और व्यापारिक लाभ दे सकते हैं जिससे व्यापारिक उत्पादन के द्वारा विदेशी मुद्रा तो अर्जित की जा सकती है, पर वे पर्यावरणीय मुद्दों से बहुत ज्यादा सरोकार नहीं रखते। न तो ये वृक्ष छाया दे सकते हैं, न ईंधन या साज-सामान की लकड़ी, न ही खाने के फल और न ही धरती को मजबूती प्रदान कर भू-क्षरण के रोकने में अपनी कोई भूमिका अदा कर सकते हैं।

संतुलन

पर्यावरण में संतुलन के लिए वांछनीय वृक्षों के रोपण तथा संवर्द्धन को ध्यान में रखना होगा। इसलिए आम, जामुन, पीपल, बरगद, नीम, अर्जुन, महुआ इत्यादि वृक्षों पर जोर दिया जाना चाहिए।

गांवों को स्वशासी और आत्मनिर्भर बनाने के लिए 1952 में सर्वप्रथम सामुदायिक विकास योजना सहित आज तक जो कार्यक्रम लागू किए गए, उनमें वृक्षारोपण, पशुपालन, भूमि सुधार, डेरी उद्योग, मछली पालन, घरेलू उद्योगों (साबुन उद्योग, हथकरघा उद्योग, रेशम उद्योग, रेशा कताई, पपीते पर आधारित उद्योग, मधुमक्खी पालन, भेड़ पालन, तिलहनों पर आधारित उद्योग) और अनेक परंपरागत उद्योगों (काष्ठ कला, लौह कला, चटाई, गुड़, खांडसारी, चटनी, जूता निर्माण, रस्सी बनाना, ऊन उद्योग, तेल, धनिया) को प्रोत्साहन देने की नीति रही है। उपरोक्त कार्यक्रमों से ग्रामीण क्षेत्रों के वे भाग जो शहरी क्षेत्रों से जुड़े हुए हैं, उनमें आर्थिक सम्पन्नता बढ़ी है परंतु यदि कुल मिलाकर स्थिति का मूल्यांकन किया जाए तो खास परिवर्तन नहीं हुआ है।

आज ग्रामीण जीवन में निजी वन तथा बागों के पेड़ों का बड़ी मात्रा में कटाव होने से जनता को लकड़ी मिलना कठिन हो गया है। लकड़ी उपलब्ध न होने के कारण लगभग 80 प्रतिशत ग्रामीण परिवारों में आज भी गोबर के उपले जलाए जाते हैं। यहां तक कि कुल गोबर का दो-तिहाई से भी ज्यादा भाग उपलों के रूप में प्रतिवर्ष जला दिया जाता है। यदि ग्रामीण क्षेत्रों में ईंधन के लिए लकड़ी का प्रबंध कर दिया जाए और गोबर को बचाकर खाद के रूप में खेतों में डाला जाए तो इससे उर्वरा शक्ति बढ़ेगी। यद्यपि आज गोबर गैस और बायोगैस संयंत्र का प्रचलन बढ़ा है।

*महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट सतना (म.प्र.)

जिनके लिए सरकार अनुदान देती है, परंतु इन संयंत्रों के लिए उपयुक्त स्थान, पूंजी, खेतिहर श्रमिकों तथा सीमांत कृषकों के पास पशुओं की कमी आदि के कारण इस कार्यक्रम को आंशिक रूप से ही सफलता मिल पाई है।

अनेक गांवों में पीने के पानी का अभाव रहता है। आज भी जिन कुंओं तथा नदियों अथवा नालों का पानी पीने के काम में लिया जाता है, उनकी स्थिति शोचनीय है। उनमें शुद्धता का नितांत अभाव है। शुद्ध जल का मापदंड बायो-आक्सीजन डिमांड-8 बहुत कम स्थानों पर उपलब्ध है। ज्यादातर मापदंड बी.ओ.डी. 15-20 के भी ऊपर पहुंच चुका है। आज देश का 80 प्रतिशत पेयजल प्रदूषित हो गया है और आये दिन देश के कोने-कोने में पीलिया, हैजा, पेचिश, मोतीझरा आदि बीमारियों से लाखों व्यक्तियों की मौत होती हैं। गांवों में जिन कुंओं का पानी प्रयोग में लाया जाता है, उनकी स्थिति संतोषजनक नहीं है, उनकी ऊपरी दीवारें ऊंची नहीं हैं तथा नियमित रूप से उनमें सफाई की विधि नहीं अपनाई जाती, जबकि ये सभी कार्य ऐसे हैं जिन्हें स्थानीय स्तर पर ही सुगमता से किया जा सकता है, बशर्ते कि ग्रामवासी आपसी सहयोग के आधार पर इसमें रुचि लें।

गांवों में आज भी जल-उपचार के अनेक देशी तरीके प्रचलित हैं। उन्हीं में से एक है—जल को मिट्टी के बर्तनों में छानना। इस विधि में पहले कोयला वगैरह का उपयोग होता था किंतु अब पानी छानने की सस्ती कैंडल मिलने लगी हैं, क्लोरीन की टिकिया भी उपलब्ध है, जो काफी सस्ती और इस्तेमाल करने में भी आसान है। प्रदूषित होने पर पेयजल स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा बन जाता है। बस्तियों, कारखानों, कृषि तथा पशुओं का कचरा, मल-मूत्र नालियों आदि के कारण नदियों का जल अशुद्ध हो रहा है। ग्रामीण क्षेत्र में बालू द्वारा जल छानने का तरीका उपयोग में लाया जाता था परंतु पानी को एकत्र करना, फिर उसे दूसरी जगह जमा करना आसान नहीं है। अतः जल का शुद्धीकरण घरेलू स्तर पर ही किया जाना चाहिए और ग्रामीण क्षेत्रों में पानी को पीने योग्य बनाने की सभी गतिविधियों की जानकारी लोगों तक पहुंचाने पर जोर दिया जाना चाहिए।

आज ग्रामीण क्षेत्रों में पर्यावरण की असुरक्षा तथा प्रदूषण के प्रमुख कारण वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, रासायनिक प्रदूषण सभी न्यूनाधिक मात्रा में मौजूद हैं तथा निरंतर बढ़ते जा रहे हैं। आज आवश्यकता है कि ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिए सही नीति का निर्धारण किया जाए, ताकि लोगों की आर्थिक स्थिति उन्नत हो तथा गांवों के पुनर्निमाण में जनता की अधिक भागीदारी हो। सिंचाई के साधनों की समुचित व्यवस्था, कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए भूमि के नमीयुक्त होने, परंपरागत किस्म के बीजों, कीटनाशकों तथा रासायनिक खादों पर रोक, विद्युत आपूर्ति और भूमि सुधार के कार्यक्रमों पर विशेष ध्यान देना होगा। इसके अलावा वृक्षारोपण, पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने के समुचित उपायों, ऊर्जा के वैकल्पिक साधनों, छोटे बांधों का निर्माण आदि कार्यक्रमों पर विशेष बल देना जरूरी होगा।

ग्रामीण समाज पर आर्थिक बोझ डाले बगैर प्रदूषणविहीन वातावरण के लिए आवश्यक है कि श्रम साधक तकनीकें अपनाकर गांवों का कच्चा माल, श्रम तथा पूंजी का उपयोग किया जाए जिससे गांव आत्मनिर्भर और स्वावलंबी बनें। इसी प्रकार ग्राम्य जीवन में फ्रिज के बदले शीतल घड़ा, मोटर या जीप के बदले बैलगाड़ी, इक्का, तांगा जैसे परंपरागत वाहनों का प्रयोग शुरू करना होगा क्योंकि इससे ऊर्जा संकट से मुक्ति, सरल उपयोग, प्रदूषण रहित वातावरण तथा ग्रामीणों को पूर्ण रोजगार की प्राप्ति होगी। ❑

शुद्ध आमदनी और शुद्ध पर्यावरण के लिए सामाजिक वानिकी

हरिश्चन्द्र व्यास

भारत की अधिकांश जनता गांवों में निवास करती है परंतु दुर्भाग्यवश उनकी दशा शोचनीय है। आर्थिक, शैक्षिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक दृष्टि से वहां लोग पिछड़े हुए हैं। गांवों में आज भी पुरानी परंपराएं, रीति-रिवाज और प्रथाएं प्रचलित हैं जिन्हें निभाते हुए वे अपना जीवन पथ तय कर रहे हैं। आर्थिक दृष्टि से अधिकांश ग्रामीण अत्यंत निर्धन हैं तथा अपनी आजीविका के लिए अपने वंश-परंपरागत व्यवसायों पर आश्रित हैं। कृषि के लिए वे सदियों से चली आ रही व्यवस्था और उपकरणों को अपनाए हुए हैं। भारतीय गांवों की स्थिति आज भी बहुत नहीं बदली है। अत: आवश्यकता है कि ग्रामीण जीवन का सामाजिक और आर्थिक विश्लेषण किया जाए, उनके कार्यों को गति प्रदान की जाए और आवश्यक आर्थिक परिवर्तन लाया जाए ताकि वे स्वाभिमान से जीवन-यात्रा व्यतीत कर सकें। उन्हें विश्व में होने वाली वैज्ञानिक, राजनैतिक, सामाजिक प्रगति से अवगत कराना भी नितांत आवश्यक है। लेकिन जब तक अर्थप्रधान युग में वे आर्थिक रूप से ताकतवर नहीं होंगे, तब तक राजनैतिक और वैज्ञानिक प्रगति में उनकी रुचि उत्पन्न नहीं हो सकेगी। अत: आर्थिक चिंताएं उनके दिमाग में से निकलने पर ही वे राजनैतिक और सामाजिक चिन्तन की ओर उन्मुख हो सकते हैं।

बढ़ती आबादी : मुख्य समस्या

इसलिए सर्वप्रथम हमें उनकी मुख्य आर्थिक परेशानियों तथा उनके कारणों पर विचार करना होगा। आज बढ़ती जनसंख्या जहां शहरों के लिए समस्या बनी हुई है, वहीं ग्रामीणों की आर्थिक दुर्दशा का कारण भी मुख्य रूप से यही है। कृषि पर निर्भर रहते हुए किसानों की आय तो बहुत कम होती है परंतु उनके घर-परिवार में सदस्यों की बढ़ती संख्या उनके लिए दो वक्त का खाना जुटाने की भी सबसे बड़ी समस्या पैदा कर देती है। अस्तु इस ओर से उन्हें चिंतारहित करने के लिए जनसंख्या के द्रुतगति से बढ़ने से होने वाले नुकसान के बारे में समझाना होगा। उन्हें समझना होगा कि जब वे अपने-अपने लिए और अपने पालतू पशुओं की आवश्यकताओं की पूर्ति अपने नियमित साधनों से नहीं कर पाते तो विवश होकर वे प्राकृतिक साधनों को विध्वंस करने में जुट जाते हैं। परिणामस्वरूप आज अनाधिकृत रूप से वन काटने, खान खोदने, पानी प्रदूषित करने तथा विभिन्न प्रकार की लकड़ी से कोयला बनाने और पालतू पशुओं तथा अपने परिवार के सदस्यों के भरण-पोषण के लिए प्रकृति के अत्यधिक दोहन से पारिस्थितिकी असंतुलन बढ़ रहा है। यदि देखा जाए तो उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के व्यवस्थित साधन भी तो समाज उन्हें उपलब्ध नहीं करवा पाता है। अत: हमें ग्रामीण लोगों को जलाने के लिए लकड़ी, जानवरों के लिए चारा-पानी तथा लोगों के लिए भोजन तथा रोजगार आदि की आवश्यकता को दृष्टिगत रखते हुए सामाजिक तौर पर ऐसे वनों का निर्माण और विस्तार करना होगा जिनसे उनकी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके तथा पर्यावरण संतुलन भी न बिगड़े। समुचित आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए यदि ईंधन के रूप में लकड़ी काफी मात्रा में उपलब्ध होगी तो पशुओं का गोबर ईंधन के रूप में प्रयोग नहीं होगा जिससे धरती की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए उसका खाद के रूप में बेहतर ढंग से उपयोग किया जा सकता है। रासायनिक खादों से जो प्रदूषण फैल रहा है, गोबर को खाद के परंपरागत रूप में प्रयोग करने से वह प्रदूषण भी नहीं फैल सकेगा। पेड़ न कटने से भूमि का कटाव नहीं होगा और भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रहेगी।

ग्रामीण समाज के विभिन्न वर्गों के लोग आज अपने-अपने रोजगारों और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बिखरने लगे हैं। पहले गांवों में सामूहिक खेती की जाती थी जिसमें फसल बोने से लेकर फसल काटने तक का कार्य सामूहिक रूप से किया जाता था। परंतु वर्तमान युग की पाश्चात्य सभ्यता ने तथा प्राकृतिक असंतुलन के परिणामों ने एकल परिवार प्रणाली तथा सामुदायिक भावना को प्राय: छिन्न-भिन्न सा कर दिया है। यदि वन क्षेत्रों का पुन: विकास किया जाए और ग्राम पंचायतों द्वारा इस कार्यक्रम को सफल बनाने की दृढ़ इच्छाशक्ति हो तो इससे बेरोजगारी की समस्या स्वत: ही समाप्त होने लगेगी, ग्रामीण इलाकों में सामाजिक वानिकी से सहयोग-भावना का पुन: विकास होगा और वन उपज से आवश्यकताओं की पूर्ति स्थानीय आधार पर हो सकेगी। व्यक्तिगत भूमि पर कृषि वानिकी, वृक्षों की खेती और वृक्षारोपण के लिए परती भूमि भी व्यक्तिगत रूप से

आबंटित कर इस कार्यक्रम को प्रभावी ढंग से किया जा सकता है। भूमिहीन मजदूर भी इस कार्यक्रम को सहज ही अपना सकेंगे।

लगभग 50-60 वर्ष पूर्व भारत के प्रत्येक गांव, कस्बे तथा शहर अपनी निर्धारित सीमा पर वन क्षेत्र को छोड़ देते थे। प्रत्येक गांव में गोचर भूमि भी इसीलिए छोड़ी जाती थी कि गांव के पशुधन का भरण-पोषण उचित रूप से हो सके और रोजाना घरों में जलाने के लिए लकड़ी भी इन्हीं वन क्षेत्रों से पर्याप्त रूप में मिल जाती थी। आज शहरी क्षेत्रों में उपयोग के लिए लकड़ी प्राप्त करने हेतु वन काटे जा रहे हैं। गांवों ने अपनी ही सीमाओं पर अतिक्रमण करना प्रारंभ कर दिया है। गांवों में पशुओं के चारे आदि के लिए छोड़ी गई भूमि पर कृषि हो रही है और लघु उद्योग स्थापित हो रहे हैं। वन नीति के अनुसार भौगोलिक क्षेत्र के 33 प्रतिशत हिस्से में वन होने चाहिए लेकिन बढ़ती आबादी, उपज की बढ़ती मांग तथा आर्थिक लोलुपता ने वनों को साफ करना प्रारंभ कर दिया। आज वन रेगिस्तान में परिवर्तित होते जा रहे हैं तथा पहाड़ी इलाके वन संपदा से रहित होते जा रहे हैं। यद्यपि विभिन्न संगठनों ने वन संपदा की सुरक्षा के लिए पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने के लिए आंदोलन भी शुरू किए हैं ताकि मरुस्थल के विस्तार को रोका जा सके और पर्वतों पर वृक्षारोपण हो सके परंतु तुरंत लाभ की आड़ में वनों को काटने के लिए लगी होड़ ने उन आंदोलनों को निस्तेज-सा कर दिया है।

वन सुरक्षित करने होंगे

बढ़ती जनसंख्या के फलस्वरूप अधिक अनाज, अधिक मकान, अधिक कपड़ा, अधिक साज-सामान की आवश्यकता का होना स्वाभाविक है। आर्थिक विकास की मनोवृत्ति तथा भौतिकवाद के प्रति आकर्षण से प्राकृतिक साधनों का दोहन बढ़ जाना भी स्वाभाविक है। परंतु पारिस्थितिकी दृष्टि से इसे पर्यावरण का प्रदूषित होना ही कहा जाएगा। मानव की यह क्रिया हमारे लिए कष्टदायक बन गई है क्योंकि उसकी नासमझी, आर्थिक मजबूरी और तुरंत लाभ प्राप्त करने की प्रवृत्ति से हरियाली सिकुड़ती-सिमटती जा रही है जिससे पर्यावरण असंतुलित हो रहा है। क्या आने वाली पीढ़ी को हम धरोहर के रूप में प्रदूषित वातावरण ही दे पाएंगे? यह बहुत गंभीर प्रश्न है। यदि इसका उत्तर हम नकारात्मक रूप से न देना चाहें, तो हमें पुनः अपने गांवों में सामूहिक उपयोग हेतु ऐसे वनों की स्थापना करनी होगी जो पारिस्थितिकी तंत्र में संतुलन को पुनः स्थापित कर सकें। सामाजिक परिवेश में वानिकी की योजना सामाजिक, आर्थिक, मानसिक, पर्यावरणीय और उज्ज्वल पारिस्थितिकी के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण है। बेरहमी से वनों का विनाश करने से बाढ़ और अकाल की भयंकर समस्याएं प्रतिवर्ष हमारे देश को झेलनी पड़ रही हैं। हम 'वृक्षो रक्षित रक्षितः' के मंत्र को भूल गए। परिणामस्वरूप देश में 1,000 करोड़ रुपये से अधिक का नुकसान प्रतिवर्ष देश को उठाना पड़ता है। अतः सामाजिक वानिकी को प्रोत्साहन देना राष्ट्रहित में है। परंतु वानिकी के नये कार्यक्रमों पर समाज तथा सरकार द्वारा अत्यधिक योजनाएं बनाने के उपरांत भी देश में वन क्षेत्रों को पुनः पूर्व की भांति रूप नहीं मिल पा रहा है। राष्ट्रीय सेवा-भाव समझकर सभी देशवासियों को अभियान के रूप में इन कार्यक्रमों में जुट जाने की प्रबल आवश्यकता है, विशेष रूप से ग्रामीणों को। इससे वन सुरक्षित रहेंगे, कृषि भूमि पर मकान तथा कल-कारखाने नहीं लगेंगे और बंजर भूमि को पुनः कृषि योग्य बनाया जा सकेगा।

वन कटने से वर्षा के साथ भूमि की परत बह जाने से भूमि बंजर हो गई और नदी-नालों, बांधों और अन्य जल स्रोतों में बहने वाली मिट्टी ने अंततः मनुष्य के स्वास्थ्य को ही दूषित जल के रूप में प्रभावित किया। अतः विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों को रोकने तथा पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने के लिए 'सामाजिक वानिकी' के अंतर्गत वृक्षारोपण और पौधशालाओं की स्थापना आवश्यक है। इससे समाज के सभी समुदायों में परस्पर भावात्मक सह-संबंध बढ़ेंगे और उन्हें आर्थिक लाभ प्राप्त होगा। ❑

(पृष्ठ 15 का शेष) **बेरोजगारी का आसान समाधान : पशुपालन**

सहायता से प्राप्त करके भेड़ पालन व्यवसाय कर सकते हैं। स्ववित्त के आधार पर भेड़ पालन व्यवसाय करने वाले लोगों को भी सरकार द्वारा एक से दो-तिहाई अनुदान राशि प्रदान की जाती है। भेड़ों से हमें दूध, ऊन और मांस प्राप्त होता है। ऊन से हर किस्म के ऊनी वस्त्र तथा कंबल का निर्माण किया जाता है जिन्हें अच्छी कीमत पर बेचकर छोटे किसान अपनी आय में वृद्धि कर सकते हैं।

सूअर पालन

मांसाहारी लोगों में मांस की पूर्ति के लिए सुअर पालन का व्यवसाय भी तकनीकी ढंग से लोगों द्वारा चलाया जा रहा है। इस व्यवसाय से हर प्रकार के पशुपालन से ज्यादा धन अर्जित किया जा सकता है। इनकी संतति की वृद्धि बहुत जल्दी होती है। एक बार में 10-12 बच्चे पैदा होते हैं। समन्वित ग्रामीण विकास अभिकरण द्वारा प्राप्त अनुदान सहायता से सूकर इकाइयों की स्थापना करने का प्रावधान है।

निष्कर्ष

समन्वित ग्रामीण विकास अभिकरण तथा पशुपालन विभाग के माध्यम से ऋण तथा अनुदान की सहायता से सरकार द्वारा पशुपालन के व्यवसाय में छोटे किसानों को रोजगार देने की अनेक योजनाएं हैं। इसके अलावा अन्य विभागों, जैसे—आदिम जाति कल्याण विभाग, उद्योग विभाग तथा बेरोजगार विभाग द्वारा पशुपालन व्यवसाय को प्रोत्साहित किया जा रहा है। पशुपालन व्यवसाय से कम परिश्रम कर ज्यादा धन अर्जित किया जा सकता है। हमारे शिक्षित बेरोजगार नवयुवक यदि पशु पालन का कार्य तकनीकी ढंग से करें और पशुपालन व्यवसाय हेतु शासन द्वारा चलाई जा रही योजनाओं के अंतर्गत आर्थिक सहायता का सही उपयोग करें, तो वे साधारण लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक धन अर्जित कर सकते हैं और अपनी बेरोजगारी दूर कर सकते हैं। ❑

जल समस्या और भारतीय नीति

विजय कुमार

पानी आदमी की सबसे पहली मूलभूत आवश्यकता है। इसके बिना मानव-जीवन की कल्पना तक नहीं की जा सकती। यही कारण है कि मानव-सभ्यता का विकास नदियों के तट पर हुआ। भारतीय महाद्वीप में, सिंधु नदी की घाटी में प्राचीन सभ्यता के अवशेष मिले हैं। गंगा-यमुना के तटों पर आर्य सभ्यता का विकास हुआ है। इसके अतिरिक्त एक युग में बड़े-बड़े नगरों की स्थापना नदियों के तट पर ही हुई थी। उस समय नदियों के माध्यम से ही यात्रा तथा व्यापार होता था। कुल मिलाकर तात्पर्य यह है कि पानी न केवल नगरों की स्थापना और विकास हेतु अनिवार्य था, वरन् वह जीवन रक्षा का प्रमुख अंग भी था।

बाढ़ और सूखा दोनों

हमारे देश में पानी का अभाव नहीं है, लेकिन आजादी के 50 वर्ष बाद भी, पानी के नियंत्रण और आवश्यकतानुरूप वितरण की प्रभावी राष्ट्रीय नीति का अभाव रहा है। यद्यपि 1987 में एक राष्ट्रीय जल नीति बनाई गई, किंतु उसका कार्यान्वयन नहीं हो सका है। यही कारण है कि जहां बाढ़, देश के एक भू-भाग में अपार धन तथा जनशक्ति की हानि करती है, वहीं दूसरी ओर राजस्थान की भूमि प्यासी रह जाती है और वहां के लोगों को एक मटके पानी के लिए मीलों चलना पड़ता है। यानी हम न तो बाढ़ पर ही नियंत्रण कर सके हैं और न ही सूखे पर।

साफ पानी की भारी कमी

भारत की 74 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती है, लेकिन तकरीबन 70 प्रतिशत आबादी को पीने का साफ पानी मयस्सर नहीं होता। आंकड़ों के अनुसार तीन लाख से अधिक गांव पेयजल की समस्या से जूझ रहे हैं। गांव तो गांव, कस्बे, शहर तथा महानगर भी इससे अछूते नहीं हैं। अनुमान के अनुसार तकरीबन 18 करोड़ गांववासियों को पीने का साफ पानी नहीं मिलता। नतीजतन गंदा तथा प्रदूषित पानी पीने के कारण अधिकांश ग्रामीण आंत्रशोथ, पेचिश, हैजा जैसी बीमारियों के शिकार हो रहे हैं। इसके अतिरिक्त देश में हजारों गांव ऐसे हैं, जहां तीन-चार मील दूर से पीने का पानी लाया जाता है। राजस्थान के हजारों गांव ऐसे हैं कि वहां रेल से पानी के वैगन लाए जाते हैं।

छठी योजना के प्रारंभ में दावा किया गया था कि तकरीबन 83 प्रतिशत शहरी आबादी को पेयजल की सुविधा बहाल कर दी गई है। इन आंकड़ों का संबंध बड़े शहरों से था। हमारे देश में लगभग 4,000 शहरी समुदाय और पांच लाख से अधिक आबादी वाले 200 शहर हैं। ये कुल आबादी का 60 प्रतिशत है, जो शुद्ध शहरी हैं। यहां जलापूर्ति 70 से 90 प्रतिशत तक है। शेष स्थानों पर 40 से 50 प्रतिशत तक जलापूर्ति होती है।

जलापूर्ति की स्थिति आज भी काफी असंतोषजनक है। यदि यही हाल रहा तो आगामी पच्चीस वर्षों में स्थिति और भयावह हो जाएगी। अंतर्राष्ट्रीय पेयजल आपूर्ति तथा स्वच्छता दशक तो कब का बीत चुका है लेकिन दुनिया भर में दो अरब से भी अधिक लोगों को साफ पानी नहीं मिल पा रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार विकासशील देशों में हर वर्ष तकरीबन ढाई करोड़ लोग गंदे पानी के कारण जानलेवा बीमारियों के शिकार हो रहे हैं।

आज देश के अधिकांश राज्यों में जल की समस्या स्थायी समस्या बन चुकी है। न पीने के लिए पर्याप्त पानी है और न कृषि में उपयोग के लिए। भूगर्भशास्त्रियों ने चेतावनी दी है कि पेयजल की मात्रा लगातार घट रही है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी ऐसा संकेत दिया है। देश में इस समस्या के गंभीर होने के दो कारण हैं—एक तो विश्व के अनेक संगठनों ने इस समस्या से निपटने के लिए हमें जो तकनीक दी, वह बेहद घटिया थी तथा जो आर्थिक सहायता मिली, उसकी नौकरशाहों, ठेकेदारों और बिचौलियों के बीच बंदर बांट हो गई। दूसरे, पेयजल संकट से निपटने के वैज्ञानिक तौर-तरीके अपनाने पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। जो प्रयास हुए भी, वे नितांत सतही और अधूरे थे। बुंदेलखंड क्षेत्र में तो स्त्रियां जब पानी दूर से भरकर लाती हैं तो यह गाना गाती हैं—"मटकी न फूटे, खसम मर जाए।"

इसके अतिरिक्त बढ़ते हुए शहरीकरण और जनसंख्या के परिणामस्वरूप वनों की कटाई, जल चक्र के टूटने और नदियों में गाद जमा होने से पानी की उपलब्धता में निरंतर कमी होती जा रही है। शायद यही कारण है कि हमारे यहां मानसून का भरोसा नहीं रहता। चूंकि भूमि, पानी और वन तीनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं। लेकिन हम भूमि का प्रयोग करते समय वन तथा जल-संसाधनों का तालमेल नहीं रखते, जिसके फलस्वरूप पानी की उपलब्धता कम हो रही है और उसमें प्रदूषण पनप रहा है।

पानी साफ करने के प्रयास

एक दूसरी समस्या उपलब्ध पानी में से अशुद्धियों को हटाने की भी है, क्योंकि अधिकांश पानी अशुद्ध होने की वजह से हम उसे पीने के प्रयोग में नहीं ला पाते और वह व्यर्थ हो जाता है। देश के अनेक गांवों और शहरों में पानी इतना खारा है कि वह पीने योग्य नहीं है। खारे पानी से मुंह का

जायका ही नहीं खराब होता, बल्कि पेट भी खराब हो जाता है। पानी में सोडियम आदि ठोस लवणों की मात्रा 1,500 पी.पी.एम. से अधिक हो, तो उसे पीने योग्य नहीं माना जाता। आंध्र प्रदेश, गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान, तमिलनाडु और पश्चिम बंगाल के अतिरिक्त पांडिचेरी, अंडमान-निकोबार द्वीपसमूह तथा लक्षद्वीप में यह समस्या है। वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद के अधीन भावनगर में स्थित केंद्रीय लवण और समुद्री रसायन अनुसंधान तथा चंडीगढ़ के केंद्रीय यांत्रिकी इंजीनियरी अनुसंधान ने पानी का खारापन दूर करने की तकनीक विकसित करके संयंत्र बनाए हैं। इस तरह के तकरीबन 150 संयंत्र लगाए गए हैं।

पानी में फ्लोराइड अधिक होने की समस्या 14 राज्यों और दिल्ली में भी पाई गई है। पानी में फ्लोराइड की मात्रा अधिक होने पर दांतों और हड्डियों पर बुरा असर पड़ता है। नागपुर स्थित केंद्रीय पर्यावरण इंजीनियरी अनुसंधान संस्थान ने पानी को फ्लोराइड मुक्त करने का भी संयंत्र बनाया है।

सेंजना या सहजन का पौधा अभी तक अपनी फलियों के लिए जाना जाता था। इसकी फलियों तथा पत्तियों में विटामिन ए काफी मात्रा में होता है। दक्षिण भारत में इसकी फलियां और पत्तियां सांभर में जरूर डाली जाती हैं। अब पता चला है कि इसके बीज गंदे पानी को साफ कर सकते हैं। सेंजना के 30 बीज 40 लीटर पानी साफ कर सकते हैं। इन बीजों में एक घुलनशील प्रोटीन होता है, जो गंदे पानी की अशुद्धियों और उसमें मौजूद रोगाणुओं को समेटकर थक्का-सा जमा देता है। थक्का गंदगी समेत नीचे बैठ जाता है और पानी को ऊपर से निथार कर पिया जा सकता है। बीजों को पीस कर इसकी पिट्ठी का लेप मटके के अंदर कर दिया जाए तो डेढ़ मिलीग्राम लेप एक लीटर पानी साफ करने के लिए पर्याप्त है। ब्रिटेन में लेस्टर विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक डा. ज्योफ फोकार्ड ने भी सेंजना के बीजों में गंदा पानी साफ करने की खूबियों का पता लगाया है। मोरीना ओलीफेरा नामक यह पौधा पहले केवल हिमालय में पाया जाता था। अंग्रेजों ने इसकी लंबी फलियों को आकार-प्रकार के अनुसार इसको ड्रम स्टिक नाम दिया। पूरे भारत में ही नहीं, एशिया और अफ्रीका के अनेक देशों में इसका प्रसार किया। अब यह जल के शुद्धीकरण का बड़ा सस्ता और उपयोगी साधन बन गया है।

निष्कर्ष

उपरोक्त तर्कों का सारांश यही है कि हमें जल के उपयोग में पूरी सावधानी बरतनी होगी। पेयजल की समस्या को हल करने के लिए कम लागत के वैकल्पिक साधनों को विकसित करने पर बल देना होगा। विभिन्न विभागों तथा एजेंसियों की मदद से राज्यों में परियोजनाएं शुरू करनी होंगी, ताकि ग्रामीण अंचलों में पेयजल की समुचित मात्रा उपलब्ध हो सके। साथ ही विकसित साधनों के अलावा परंपरागत प्राचीन साधनों का भी उपयोग करने पर बल दिया जाना चाहिए, जिन्हें विकास की इस अंधी दौड़ में हम भूल रहे हैं। भारत में आने वाले जल संकट का पूर्वानुमान करते हुए वाशिंगटन स्थित वर्ल्ड वाच इंस्टीट्यूट ने काफी पहले यह घोषणा कर दी थी। एक तरह से यह हमारे नीति-निर्धारकों, योजनाकारों के लिए चेतावनी है कि यदि अब भी उपलब्ध जल का सही प्रबंधन नहीं हुआ, तो शताब्दी के अंत में देश को भयंकर सूखे का सामना करना पड़ सकता है।

साथ ही उन कल-कारखानों पर भी जुर्माना किया जाना आवश्यक है, जो अपने फालतू रसायनों को नदियों में बहाकर पशु-पक्षियों, वन्य जीवों और मनुष्यों की जान खतरे में डालते हैं। वर्षों तक हमारे देश में इस ओर ध्यान नहीं दिया गया। लेकिन हाल के वर्षों में पर्यावरण मंत्रालय ने इस समस्या को गंभीरता से लेना शुरू कर दिया है। लेकिन अभी भी कल-कारखाना मालिकों में इस गलत मनोवृत्ति के प्रति कोई खास चेतना नहीं जागी है। अत: जरूरी है कि ऐसे कल-कारखानों पर भारी जुर्माना लगाया जाए। भोपाल गैस कांड के पीड़ितों के लिए जैसे यूनियन कार्बाइड जैसी बड़ी कंपनी को हर्जाना देने पर विवश किया गया, वैसे ही कारखाना मालिकों को भी विवश किया जाना चाहिए। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि भोपाल गैस त्रासदी के पश्चात 'यूनियन कार्बाइड' पर दबाव पड़ा तो उसमें बहुत बड़ी भूमिका स्वयं जन-सामान्य और उनके स्वयंसेवी संगठनों की थी। अत: पर्यावरण को प्रदूषित करने और नदियों के जल को जहरीला बनाने वाले कल-कारखानों के खिलाफ भी जन-सामान्य, खासतौर पर ग्रामवासियों तथा ग्रामीण क्षेत्रों में काम कर रहे स्वयंसेवी संगठनों को अहम भूमिका निभानी होगी। वैसे इस दिशा में महाराष्ट्र की स्वयंसेवी संस्था 'पानी पंचायत' ने अनुकरणीय मिसाल पेश की है। वह कम मूल्य पर पानी उपलब्ध कराने की दिशा में बहुत अच्छा काम कर रही है। ❑

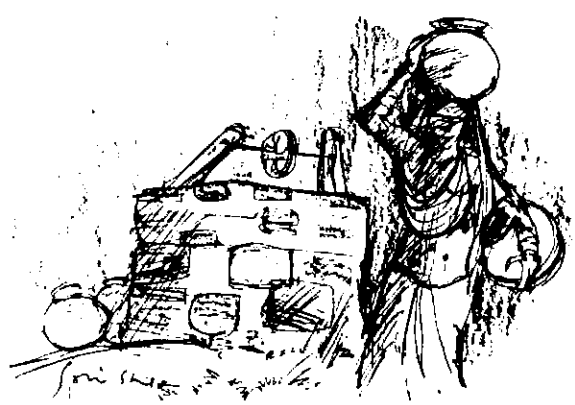

डवाकरा से ग्रामीण महिलाओं को कैसे मिले आर्थिक लाभ

डा. नीलमा कुंवर*/वन्दना वर्मा**

वास्तव में डवाकरा का अर्थ ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल विकास योजना है जिसे भारत सरकार ने 1982 में लागू किया था। इस कार्यक्रम की परिकल्पना एक नया परिवर्तन लाने के लिए की गई थी। इस कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, आई.आर.डी.पी. के अंतर्गत किए गए प्रावधानों के अनुसार ग्रामीण महिलाओं को आर्थिक अनुदान और कर्ज उपलब्ध कराकर उनकी आर्थिक स्थिति मजबूत करना, इन महिलाओं को उनके उत्पादन कौशल, कार्य क्षमता तथा योग्यता को बढ़ाने और दायित्वों को निभाने वाले रोजगारों तथा नौकरियों का प्रावधान करना तथा विकास-अधिकारियों को इस प्रकार तैयार करना कि वह गरीब महिलाओं की स्थिति, उनकी जरूरतों, उनकी विवशता एवं विकास कार्यों के लिए उनमें छिपे हुए सामर्थ्य और क्षमताओं को पहचाने और उन्हें सही तथा सकारात्मक दिशा तथा सहयोग प्रदान करें।

यह एक ऐसी योजना है जो अंततः गरीब ग्रामीण महिलाओं को स्वावलंबी और आत्मनिर्भर बनाने के उद्देश्य से गरीबी पर सीधा असर डालती है। यह योजना लक्षित महिला समूह के सदस्यों को आरंभ से ही अपने में शामिल करने की पक्षधर है ताकि उनकी सहायता से उनकी समस्याओं को पहचानने, समस्याओं को हल करने के साधन जुटाने और उनके प्रबंध का कार्य किया जा सके। इस योजना का पहला चरण गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाली ग्रामीण महिलाओं की पहचान करना है।

इसमें पहले विकास खंड के निकटवर्ती गांवों को चुना जाता है। गांवों को चुनते समय इस बात का ध्यान रखा जाता है कि उसमें आवागमन के पर्याप्त साधन हों, बाजार निकट हो तथा कच्चा माल आसानी से गांवों में उपलब्ध हो सके। गांवों को चुनने के बाद, उन गांवों की गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाली महिलाओं को चुना जाता है। 10 से 15 महिलाओं को एक समूह में रखा जाता है। समूह बनाते समय यह ध्यान रखा जाता है कि सभी महिलाएं एक ही सामाजिक और आर्थिक स्तर की हों ताकि उनमें तालमेल बना रहे। इन महिलाओं की आयु 18 से 45 वर्ष के बीच होनी चाहिए। ये समूह बनाते समय एक बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि समूह ऐसे गांवों तथा ऐसी महिलाओं के गठित किए जाएं जो कार्य करने की इच्छुक हों। एक विकास खंड में अधिक से अधिक 50 समूहों का गठन किया जा सकता है।

यह प्रश्न हमेशा उठता रहता है कि डवाकरा समूहों में किस प्रकार की आर्थिक गतिविधियां प्रोत्साहित की जानी चाहिए। यद्यपि डवाकरा के कुछ अनुभवों से पता चलता है कि उन समूहों में जहां क्रय-विक्रय तथा आर्थिक सहयोग स्थापित कर लिया गया है, वहां लाभार्थियों को गतिविधियों से जोड़ने में अधिक सफलता प्राप्त हुई है। इसीलिए अच्छे परिणाम हासिल करने के लिए आर्थिक गतिविधियों का चुनाव वैज्ञानिक पद्धति से किया जाना चाहिए। आर्थिक गतिविधि का चयन करते समय दो बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए : पहला, उत्पादन की बिक्री के लिए अच्छे बाजार की संभावना हो तथा दूसरा, निवेश की गई राशि की समुचित वापसी तथा धनार्जन की अच्छी संभावना हो। इसके अलावा उत्पादन तकनीकों तथा धन की उपलब्धता पर भी विचार किया जाना चाहिए।

डवाकरा के अंतर्गत बने प्रत्येक समूह को आवर्ती पूंजी के रूप में 25,000 रुपये का प्रावधान होता है। इस धन का उपयोग समूह के क्रिया-

(शेष पृष्ठ 25 पर)

*उपनिदेशक (महिला एवं बाल विकास) राज्य ग्रामीण विकास संस्थान, लखनऊ
**एम.एस-सी. छात्रा गृह विज्ञान विभाग, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौ. वि.वि., कानपुर

विकास और पर्यावरणीय शिक्षा

डा. आर. के. खितौलिया*
श्रीमती बीना आनंद**

औद्योगिक क्रांति के साथ-साथ वातावरण में प्रदूषण बढ़ रहा है। पर्यावरण के प्रति जागरूकता लाने का अब समय आ चुका है। यह जागरूकता छोटे-से बच्चे से शुरू होकर समाज के हर हिस्से में आनी चाहिए। स्कूल से लेकर कालेज की शिक्षा में भी पर्यावरण संबंधी विषय होने चाहिए। तकनीकी संस्थान, गैर-सरकारी संस्थान तथा अन्य औद्योगिक इकाइयां इस पहलू में बहुत सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

पिछले कुछ वर्षों से पर्यावरण से संबंधित समस्याओं ने संपूर्ण विश्व का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। एक ओर तो मनुष्य आर्थिक विकास द्वारा जीवन की सुख-सुविधाएं जुटाने में प्रयत्नशील है, तो दूसरी ओर पर्यावरण तंत्र में असंतुलन की समस्या से जूझ रहा है। संपूर्ण विश्व के पर्यावरण संतुलन के लिए मानवीय तथा सामाजिक जीवन को स्थायी रूप में स्वीकार करने की आवश्यकता पर बल दिया जा रहा है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि विकास के साथ-साथ पर्यावरण संरक्षण का भी ध्यान रखा जाए। विकास तथा पर्यावरण एक-दूसरे के पूरक बनें, न कि उन्हें एक-दूसरे से खतरा हो। इसके लिए यह जरूरी नहीं कि पर्यावरण के बचाव के लिए कोई दंडनीय कानून या नियम हों। लेकिन जरूरत है तो लोगों में पर्यावरणीय शिक्षा की। पर्यावरण के प्रति लोगों में यह जागरूकता होनी चाहिए कि पर्यावरण के बचाव के लिए हम सबने यदि मिल कर कोई प्रयास न किया तो आने वाले 20 वर्षों में मानव-जीवन दुर्लभ हो जाएगा।

विकास का अर्थ

18वीं शताब्दी में जो औद्योगिक क्रांति आरंभ हुई थी, वह 19वीं तथा 20वीं शताब्दी के आते-आते इस स्तर तक पहुंच गई कि उपभोक्ता के उत्थान, किंतु पर्यावरण के विनाश का कारण बन गई। विकास तथा पर्यावरण का एक-दूसरे के विपरीत दिशा में, तेज रफ्तार से चलते रहने के कारण आज विकास पर्यावरण के लिए खतरा समझा जाने लगा है। इस दिशा में पादप ग्रह (ग्रीन हाऊस) प्रभाव, तेजाबी वर्षा, ओजोन परत, आदि के बारे में जानकारी हासिल होने के बाद लगने लगा कि यदि समय रहते हम नहीं चेते और विकास इसी रफ्तार से होता रहा तो हम अपनी आने वाली पीढ़ियों को एक बीमार पर्यावरण के अलावा कुछ नहीं दे सकेंगे।

प्रदूषण का खतरा औद्योगीकरण की वृद्धि के कारण पैदा हुआ है। फिर भी, क्या कारण है कि हम ज्यादा कारखानों की स्थापना करते जातें हैं? इन सब सवालों का जवाब देना सरल नहीं है क्योंकि औद्योगीकरण के लाभ भी कम नहीं हैं।

औद्योगीकरण के विकास से वातावरण को प्रदूषित करने वाले तरह-तरह के जहरीले रसायनों का प्रसार तेजी से बढ़ रहा है। इनमें से कुछ का असर जीवित प्राणियों पर भी अप्रत्याशित रूप से पड़ रहा है। औद्योगिक नगरों के अनेक लोग अपने घरों के दरवाजों, खिड़कियों और दीवारों के नुकसान से परिचित होंगे। भारत, थाइलैंड और फिलीपीन जैसे विकासशील देश औद्योगिक विकास की गति में तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। ये देश प्रदूषण के परिणामस्वरूप होने वाले खतरों से पूरी तरह परिचित नहीं हैं।

विज्ञान के विकास के साथ-साथ हमारा चिकित्सीय ज्ञान भी बढ़ा है। इससे मृत्यु दर की अपेक्षा जन्म दर बढ़ी है। परिणामत: आबादी में वृद्धि होती जा रही है। जनसंख्या की वृद्धि के साथ जीवनोपयोगी आवश्यकताएं—अनाज, कपड़ा और पेय जल भी बहुत अधिक परिमाण में जरूरी है। जब तक आबादी बढ़ती रहेगी, तब तक हमें आराम से गुजर-बसर करने के लिए अधिकाधिक औद्योगीकरण का सहारा लेना पड़ेगा।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि मानव-जीवन के लिए विकास तथा पर्यावरण दोनों ही आवश्यक हैं। अत: दोनों में समन्वय रखने के लिए अब तमाम औद्योगिक इकाइयों के लिए यह जरूरी है कि वे अपने कचरे-मलबे का पुनर्चक्रण करके उपयोग में लाएं। पर्यावरण को संतुलित रखने वाले उपकरण लगाएं और अपने रसायनों तथा अपशिष्ट पदार्थों को उपचार किए बिना नदियों आदि में न डालें। आधुनिक युग में बिना उद्योगों के जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। लेकिन उद्योगों की वजह से पर्यावरण का नुकसान रोकने के लिए कानूनी हस्तक्षेप भी जरूरी समझा जाने लगा है।

शिक्षा का अभाव

पर्यावरण की सुरक्षा तथा विकास को एक साथ चलाने के लिए हमारा शिक्षित और जागरूक होना आवश्यक है। विकासशील देशों में चाहे शहर हों या गांव, जहां भी शिक्षा का अभाव है, वहां पर्यावरण के प्रति लोगों को कोई जानकारी नहीं है। हो सकता है कि पीने के लिए पेयजल स्वच्छ न हो, फिर भी वे लोग उसी जल को पी रहे हैं। हमारे देश में तो पवित्र

*/**अनुसंधान अधिकारी, केंद्रीय मृदा एवं सामग्री अनुसंधानशाला, हौज खास, नई दिल्ली

नदियों के जल के साथ लोगों की धार्मिक भावनाएं जुड़ी हैं तथा वे लोग उसी पवित्र नदी में नहाकर, कपड़े धोकर, जानवरों को नहलाकर तथा कूड़ा-कचरा डालकर अपवित्र (अशुद्ध) तो करते ही हैं, साथ ही उसी जल को पीकर बीमारी को भी निमंत्रण देते हैं।

प्राकृतिक संसाधनों को उचित तरीके से इस्तेमाल किया जाना चाहिए, उत्पत्तिमूलक संसाधनों के संरक्षण के लिए विस्तृत अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम बनाना चाहिए, जो उपलब्ध संरक्षित भूमि की जानकारी दे, उनकी जांच करे और यह प्रयास करे कि विश्व की कम-से-कम दस प्रतिशत भूमि उत्पत्तिमूलक संसाधन के संरक्षण में काम आए। ऐसी सभी योजनाओं को बनाने और अमल में लाने के लिए हमारा शिक्षित होना आवश्यक है।

विकास के नाम पर आज जंगलों की अंधाधुंध कटाई हो रही है। कहीं आवासीय कालोनी बनाने के लिए, कहीं उद्योग स्थापित करने के लिए, कहीं आजीविका कमाने के लिए, तो कहीं बांध बनाने के लिए—काफी समय से हम वनों को केवल काटते चले आ रहे हैं। इस विकास के चलते हमने 80 प्रतिशत जंगल नष्ट कर दिए और यह नहीं सोचा कि इस वन-विनाश से हमें ही नुकसान होगा।

हमारे वायुमंडल में, हमारे दैनिक कार्यों तथा दिन-प्रतिदिन बढ़ते उद्योगों की वजह से, कार्बन-डाई-आक्साइड का स्तर बढ़ता जा रहा है, फलस्वरूप वायुमंडल का तापक्रम बढ़ रहा है। वृक्ष कार्बन-डाई-आक्साइड का स्तर कम करने में बहुत सहायक होते हैं। ये कार्बन-डाई-आक्साइड का अवशोषण करके प्रकाश-संश्लेषण द्वारा खाद्य पदार्थ बनाते हैं। अत: हमें चाहिए कि एक पेड़ काटने से पहले उसके स्थान पर कम-से-कम एक पेड़ अवश्य लगाएं। औद्योगिक इकाइयों को चाहिए कि वे अपने परिसर के चारों तरफ एक हरित पट्टी बनाएं, जो न केवल देखने में सुंदर लगेगी बल्कि आस-पास के वातावरण को शुद्ध रखने में भी सहायक होगी। वायुमंडल में कार्बन-डाई-आक्साइड का स्तर एक सीमा तक नियंत्रित रखने से पृथ्वी के बढ़ते तापमान को भी नियंत्रित किया जा सकता है। वनों की उपयोगिता केवल ईंधन तथा इमारती लकड़ी प्रदान करना ही नहीं, बल्कि वनों से हमें शुद्ध हवा और स्वच्छ पर्यावरण भी मिलता है। वन अनेक जीव-जंतुओं का निवास स्थान है। वनों के विनाश के कारण आज संसार की अनेक दुर्लभ जातियां, प्रजातियां, जीव-जंतु विनाश के कगार पर पहुंच गए हैं जिसके कारण पारिस्थितिकीय व्यवस्था बिगड़ने से भी पर्यावरण प्रभावित होता है। हमें संकल्प लेना चाहिए कि जो वन बचे हुए हैं, उनका संरक्षण करें तथा नए वन लगाएं। अपने घरों के आस-पास पेड़-पौधे लगाकर भी हम स्वच्छ पर्यावरण के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभा सकते हैं।

शिक्षा का दायरा

बच्चों की स्कूल से लेकर कालेज तक की शिक्षा के पाठ्यक्रम इस प्रकार बनाए जाने चाहिए कि व्यक्ति आरंभ से ही पर्यावरण संबंधी समस्याओं को समझ सके, उनसे समन्वय कर सके। हमारे पाठ्यक्रम अंतर-अनुशासनिक गतिविधियों वाले होने चाहिए। पर्यावरणीय शिक्षा को लेकर एक विशेष कार्यक्रम की आवश्यकता है जो कि छात्रों को पारिस्थितिकीय व्यवस्था, आर्थिक, तकनीकी, वैज्ञानिक, सामाजिक-राजनीतिक और आध्यात्मिक संयोजन को समझा सके और मूल्यांकन कर सके। इन विषयों के ज्ञान को विकास तथा पर्यावरण की सुरक्षा से समन्वित करके पर्यावरण संरक्षण में अपना योगदान दे सके। तेजी से आ रहे सामाजिक, आर्थिक तथा औद्योगिक बदलाव के कारण पर्यावरण पर पड़ने वाले दबाव को महसूस कर सके। प्रत्येक का पर्यावरण पर तथा सामाजिक व्यवहार में उनके परिणाम का असर जान सके। पर्यावरणीय शिक्षा को व्यावहारिक बनाना होगा ताकि शिक्षार्थी किताबी ज्ञान तक ही सीमित न रह जाए। शिक्षकों को चाहिए कि वे बच्चों को पेड़-पौधे लगाने तथा आस-पास की कालोनियों को साफ-सुथरा रखने के लिए प्रोत्साहित करें।

इन सब कार्यों को संपन्न करने के लिए शिक्षार्थी, शिक्षक व प्रशासन, तीनों को ही खुले दिमाग से काम लेना होगा। इसके लिए पाठ्यक्रम में लचीलापन लाना होगा तथा पर्यावरण से संबंधित नई जानकारियों को समय-समय पर उसमें जोड़ना होगा। इस कार्य के लिए संरक्षण संस्थाओं को स्थानीय व्यापारियों, उद्योगपतियों और उस स्थान के पर्यावरण की समस्याओं को समझ कर शिक्षा का उद्देश्य व पाठ्यक्रम तय करना होगा।

पाठ्यक्रम में एक परियोजना-कार्य रखना चाहिए ताकि विद्यार्थी का ग्रामीण परिवेश से परिचय हो, वे वहां के रहन-सहन को देखें, वहां के रीति-रिवाजों को समझें और अपने अर्जित ज्ञान से ग्रामीणों को लाभान्वित करके बताएं कि पर्यावरण की सुरक्षा का क्या महत्व है। आज अधिकांश ग्रामवासी शहरों की ओर भाग रहे हैं। इस कारण शहरों पर आबादी का दबाव बढ़ता जा रहा है। इसी कारण शहरों में बढ़ती आबादी को जन-सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए ही शहरों का पर्यावरण भी नष्ट हो रहा है। शिक्षित व्यक्ति यदि गांवों में वहां के संसाधनों को उपयोग में लाकर जीवन-यापन करे तथा गांव के विकास में सहयोग करे, तो शहर अनावश्यक आबादी के बोझ से तो बचे ही रहेंगे, साथ ही गांवों के संसाधनों का उचित उपयोग हो सकेगा। गांव का अशिक्षित व्यक्ति ईंधन या आजीविका के लिए पेड़ काटना तो जानता है, किंतु उस पेड़ को काटने से पर्यावरण पर क्या प्रभाव पड़ेगा, यह नहीं जानता। शिक्षा के समुचित उपयोग से हम विकास तथा पर्यावरण दोनों को एक-साथ चला सकते हैं।

तकनीकी संस्थानों का योगदान

जागरूक बदलाव लाने के लिए तकनीकी संस्थानों को अनेक कार्यक्रम अमल में लाने होंगे। गैर-सरकारी संस्थानों से सहयोग लेना होगा, जानकारी एकत्र करनी होगी, सेमिनार, कार्यशाला तथा गोष्ठी आयोजित करनी होगी, सरकारी तथा गैर-सरकारी कर्मचारियों के लिए अल्पकालीन पाठ्यक्रम आयोजित करने होंगे। पर्यावरण से संबंधित विषयों पर अखबार, पत्रिका आदि निकालने होंगे तथा अंधाधुंध विकास का पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव और उससे बचने के उपाय आदि पर पोस्टर छाप कर, दफ्तरों, व्यावसायिक व सामूहिक स्थानों पर लगाने होंगे। उद्योगों तथा संस्थानों के लिए पर्यावरण सूचनाओं का तंत्र बनाकर और मीडिया के सहयोग से पर्यावरण पर ग्रीनकालेज जैसी संस्था स्थापित करके हम आम आदमी की सोच बदलने में कामयाब हो सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति यह समझे कि यदि

जीवन के लिए विकास आवश्यक है तो जीवित रहने के लिए पर्यावरण की सुरक्षा भी उतनी ही आवश्यक है। इसीलिए हमें अपने प्राकृतिक संसाधनों के उचित रख-रखाव तथा उपयोग पर ध्यान देना चाहिए, तभी विकास पर्यावरण का दोस्त हो सकेगा।

उपसंहार

शिक्षा ही समग्रता के दर्शन करा सकती है। औद्योगिक विकास को रोकने की नहीं, बल्कि उसके पीछे काम करने वाले दूषित वातावरण तथा विचारधारा को बदलने की आवश्यकता है। मानव-प्रयासों को उचित दिशा देनी चाहिए, संस्कृति को विकृत होने से बचाना चाहिए। इन सबका एकमात्र उपाय है—पर्यावरणीय शिक्षा जिसमें मानवता के तथ्य कूट-कूट कर भरे हैं। पर्यावरण को बचाने के लिए कानून बनाने और उन्हें अमल में लाने के लिए प्रयास हो रहे हैं। पर्यावरण सुरक्षा के लिए अनेक कानून समय-समय पर बनाए गए हैं और न्यायालयों ने समय-समय पर अनेक महत्वपूर्ण फैसले देकर विकास तथा पर्यावरण में संतुलन स्थापित करने की चेष्टा की है, किंतु सभी कार्य कानून के बल पर नहीं हो सकते। इसके लिए जरूरी है कि प्रत्येक व्यक्ति की स्वयं के प्रति और अपने समाज तथा वातावरण के प्रति जिम्मेदारी होना ताकि हम अपने द्वारा किए गए प्रत्येक कार्य के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभाव-कुप्रभाव को समझ सकें, पर्यावरण के महत्व को समझ सकें। विकास में हम अपनी भागीदारी अवश्य निभाएं किंतु पर्यावरण संरक्षण हेतु भी अपना सहयोग दें, तभी विकास तथा पर्यावरण एक-दूसरे के विरोधी न होकर हाथ में हाथ लेकर चल सकेंगे।

संदर्भ सूची

1. रविंद्र कुमार खितौलिया, *पर्यावरण के संरक्षण का महत्व एवं उपयोगिता,* दि इंस्टीट्यूशन आफ इंजीनियर्स (इंडिया) का जर्नल, हिंदी विभाग, जिल्द 73, खंड हिंदी 2, अगस्त 1992
2. एन. शेषगिरि, *प्रदूषण,* नेहरू बाल पुस्तकालय, नेशनल बुक ट्रस्ट, भारत 1991
3. उत्तम कुमार सिंह तथा कुमार प्रभाकर, *विकास बनाम पर्यावरण, हमारा पर्यावरण,* पर्यावरण कांग्रेस विशेषांक, नई दिल्ली, दिसंबर 1991
4. डा. आर.के. खितौलिया और जे. खितौलिया, *पर्यावरण संरक्षण और कानूनी उपाय,* रोजगार समाचार साप्ताहिक, खंड 21 अंक 12, नई दिल्ली 22-28 जून 1996
5. आर.के. खितौलिया, जे. खितौलिया, *नेसेसिटी आफ पब्लिक एवेयरनेस फार इनवायरमेंट कानसियशनेस,* ए.एस.सी.ई. न्यूज, ए.एस.सी.ई.-आई एस, खंड 8, नं. 1, जनवरी-फरवरी 1996
6. नवभारत टाइम्स, दिल्ली, दिनांक 9.7.1996
7. *बायोप्रेस-फ्रेंच वे टू मेनेज वेस्ट,* हिंदुस्तान टाइम्स, नई दिल्ली-12.3.1996
8. आर.के. खितौलिया, *इनवायरमेंटल एजूकेशन: नीड आफ एन आवर एईट* नेशनल कनवेंशन आफ इनवायरमेंटल इंजीनियर्स, अक्तूबर 30-31, 1992 इलाहाबाद
9. ए.आर. खान, *इनवायरमेंटल एजूकेशन: रोल आफ पब्लिक सेक्टर आरगनाईजेशन, एन जी ओ एस एंड बिग इंडस्ट्रियल हाउसेस,* नेशनल सेमिनार आन डेवलपमेंट एंड दि इनवायरमेंट, 22-23 दिसंबर 1994 बी एच ई एल, भोपाल
10. डा. बिनोद कुमार सिन्हा, *पर्यावरण और विकास,* भारतीय पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण संस्थान, पर्यावरण काम्पलेक्स, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली
11. *डेवलेपमेंट वर्सिस इकालाजी,* ओकेशनल मोनोग्राफी नं. 8, इंडियन इंस्टीट्यूट आफ इकालोजी एंड इनवायरमेंट, नई दिल्ली। ❑

(पृष्ठ 22 का शेष) **डवाकरा से ग्रामीण महिलाओं को कैसे मिले आर्थिक लाभ**

कलापों जैसे कच्चे माल की खरीद, उपकरणों और बाजार व्यवस्था, बाल कल्याण, अध्ययन हेतु समूह के सदस्यों द्वारा की जाने वाली यात्रा, समूह की संयोजिका अथवा सदस्यों द्वारा किसी विशिष्ट कार्य के संपादन के लिए पुरस्कार राशि या मानदेय, आदि में ही किए जाने की व्यवस्था होती है। चूंकि यह अनुदान एक समूह को वर्ष में एक बार ही मिलता है, अत: इस धन का उपयोग इस प्रकार किया जाए कि उस पूंजी से उत्पादन का उद्देश्य तो पूरा हो ही, साथ ही पूंजी का आवर्तन भी होता रहे। महिला समूह को इस धन को किसी राष्ट्रीयकृत बैंक में रखना होता है। यह खाता संयुक्त होता है जिसे संयोजिका तथा मंत्री दोनों संचालित करते हैं। यदि संयोजिका हट जाए, पद त्याग दे या किसी अन्य कारण से अलग हो जाए तो मंत्री तथा प्रबंधकारिणी समिति द्वारा अधिकृत सदस्य द्वारा यह कार्य किया जाएगा।

डवाकरा योजना के अंतर्गत ग्रामीण महिलाओं को अधिक से अधिक लाभ उसी स्थिति में संभव है, जब उनके द्वारा बनाए गए सामानों की बिक्री ऊंचे मूल्यों पर हो। किसी भी सामान की खरीद तथा बिक्री उसकी गुणवत्ता पर निर्भर करती है। डवाकरा योजना के अंतर्गत उत्पादनों की गुणवत्ता और दाम, महिलाओं को मिलने वाले प्रशिक्षण के स्तर, कच्चे माल के दाम, उपयोगिता और सामग्री निर्माण के समय होने वाली कटौती इत्यादि पर निर्भर करती है। इस प्रकार क्रय-विक्रय प्रणाली सभी प्रकार की आय संबंधी गतिविधियों को प्रभावित करती है।

डवाकरा की साख गिरे नहीं, इसको प्रगति के रास्ते में रखने के बारे में सुझाव है कि सबसे पहले क्रय-विक्रय के कुछ क्षेत्रों में सहायता प्रदान करने के लिए व्यावसायिक स्तर पर एक सशक्त राज्य स्तरीय विक्रय संस्थान का गठन किया जाना चाहिए जो बाजार में मिलने वाले उत्पादनों तथा उसके खरीददारों की समीक्षा करके उन उत्पादनों की बिक्री बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन दे। इसके अतिरिक्त डवाकरा में लगे कर्मचारियों को क्रय-विक्रय तथा डिजाइन, मूल्य निर्धारण, पैकिंग तकनीक इत्यादि के क्षेत्र में मार्गदर्शन करें। इस संस्थान का यह भी काम हो कि डवाकरा के अंतर्गत बनाई जाने वाली सामग्री की गुणवत्ता का सुधार कर उसकी छवि को ऊंचा उठाए तथा इन उत्पादनों के मूल्य संबंधी पहलुओं पर सरकारी नीतियों को प्रभावित करे जिससे लाभार्थी को अधिक से अधिक लाभ मिल सके। डवाकरा कार्यक्रम को तभी बेहतर बनाया जा सकता है, जब योजना में निर्धारित धनराशि की कटौती न की जाए तथा स्थानीय कार्यालय के स्तर पर निर्णय लेने में मदद के लिए गैर-सरकारी संस्थाओं का सहयोग लिया जाए। ❑

हिन्दी राज्यों में ग्रामीण महिला साक्षरता : एक चुनौती

गीता चौबे *

स्वतंत्रता प्राप्ति के पचास वर्षों के बाद आज हम आधी आबादी को तो साक्षर बनाने में सफल हो गए हैं किंतु संपूर्ण भारत को साक्षर बनाने का लक्ष्य अभी काफी दूर नजर आता है। इतना ही नहीं, साक्षरता दरों में क्षेत्रगत तथा लिंगगत भेद बहुत अधिक हैं। 1991 में देश की कुल साक्षरता दर 52 प्रतिशत है। इसमें नगरीय साक्षरता दर 73 प्रतिशत, जबकि ग्रामीण साक्षरता दर केवल 45 प्रतिशत है, लगभग 28 प्रतिशत का अंतर है। महिला साक्षरता दर में क्षेत्रगत भिन्नता भी कम नहीं है। देश की महिला साक्षरता दर 36 प्रतिशत है जिसमें नगरीय महिला साक्षरता दर 64 प्रतिशत तथा ग्रामीण महिला साक्षरता दर मात्र 31 प्रतिशत है जो नगरीय दर की आधी से भी कम है। इसके अतिरिक्त पुरुष और महिला साक्षरता दरों में भी भिन्नताएं हैं। भारत की पुरुष तथा महिला साक्षरता दरें क्रमश: 64 तथा 36 प्रतिशत है, अंतर 28 प्रतिशत का है। ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुष और महिला साक्षरता दरें क्रमश: 58 तथा 31 प्रतिशत है। इस प्रकार पुरुष और महिला साक्षरता दर में 27 प्रतिशत का अंतर है जो काफी अधिक है।

भारत के कुछ गांवों में संपूर्ण साक्षरता के लिए किए गए अथक प्रयासों को काफी सफलता मिली है और उनकी साक्षरता का स्तर काफी ऊंचा है यथा—केरल, मिजोरम, चंडीगढ़ तथा दिल्ली में साक्षरता दर क्रमश: 89.8, 82.3, 77.8 और 75.3 प्रतिशत है। दूसरी ओर देश में अत्यधिक निम्न साक्षरता दर वाले भी कई राज्य हैं, उनमें चारों बड़े हिन्दी भाषी राज्य—बिहार, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश हैं, जहां साक्षरता दरें क्रमश: 38.5, 38.6, 41.6 तथा 44.2 प्रतिशत है। सभी हिन्दी राज्यों की साक्षरता दरें भारत की औसत साक्षरता दर से काफी कम है। यह कहना उचित होगा कि इन बड़े राज्यों की साक्षरता दरें कम होने के कारण ही देश की साक्षरता दर कम है। देश में ही उच्च साक्षरता दर और निम्न साक्षरता दर वाले राज्यों की साक्षरता दरों में अंतर लगभग 50 प्रतिशत का है।

हिन्दी राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता की स्थिति अधिक खराब है, उसमें भी विशेषकर महिला साक्षरता की। यदि विश्लेषण की इकाई को जिले स्तर तक ले जाएं तो हम पाएंगे कि कई जिलों में ग्रामीण क्षेत्रों की महिला साक्षरता दर 10 प्रतिशत से भी कम है। महिला साक्षरता का निम्न स्तर वास्तव में निरक्षरता की समस्या के मूल में छिपे हुए अनेक कारणों का प्रतीक है। प्रस्तुत लेख में हिन्दी राज्यों के उन जिलों की ग्रामीण महिला साक्षरता का विश्लेषण किया गया है, जहां यह साक्षरता दर 10 प्रतिशत से भी कम है।

*गोविन्द बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान, इलाहाबाद

हिन्दी राज्यों में महिला साक्षरता

1991 में भारत में पहली बार साक्षरों की संख्या निरक्षरों की संख्या से अधिक हुई किन्तु आज भी देश में लगभग 33 करोड़ लोग (सात वर्ष की आयु से अधिक) अनपढ़ हैं। इन निरक्षरों का 85 प्रतिशत (लगभग 28 करोड़) भारत के गांवों में रह रहा है। विशेष बात यह है कि हिन्दी राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रों में निरक्षर महिलाओं का 50 प्रतिशत है। देखें तालिका 1।

तालिका 1

हिन्दी राज्यों में निरक्षर ग्रामीण महिलाओं की संख्या—1991

(हजार में)

राज्य	कुल ग्रामीण महिलाएं	कुल निरक्षर ग्रामीण महिलाएं	कुल निरक्षर
बिहार	28,247	23,177	42,206
मध्य प्रदेश	16,560	15,725	29,625
राजस्थान	12,865	11,401	21,597
उत्तर प्रदेश	41,184	33,350	64,769
कुल योग	1,01,616	83,653	1,58,197
भारत	2,44,668	1,66,741	3,28,879

स्रोत : स्टेटिस्टिकल डेटाबेस फार लिटरेसी-1991, नेशनल इन्स्टीट्यूट आफ एडल्ट एजूकेशन, 1993 नई दिल्ली

तालिका 1 से स्पष्ट है कि भारत की कुल ग्रामीण महिलाओं का लगभग 40 प्रतिशत इन हिन्दी राज्यों में रहता है, जबकि भारत की कुल ग्रामीण निरक्षर महिलाओं का आधा हिस्सा इन राज्यों में रहता

है। इन राज्यों में अभी 8 करोड़ से भी अधिक महिलाओं को साक्षर बनाया जाना है। स्थिति यह है कि इन राज्यों की महिला साक्षरता दर 20 प्रतिशत से भी कम है जो भारत की औसत ग्रामीण महिला साक्षरता है। देखें तालिका 2।

तालिका 2
हिन्दी राज्यों में महिला साक्षरता दरें

राज्य	महिला साक्षरता दर	नगरीय महिला साक्षरता दर	ग्रामीण महिला साक्षरता दर
बिहार	22.89	55.94	17.95
मध्य प्रदेश	28.85	58.92	19.73
राजस्थान	20.44	50.24	11.59
उत्तर प्रदेश	26.98	50.38	19.02
केरल	86.17	89.06	85.12
भारत	39.29	64.05	30.61

स्रोत : उपर्युक्त (तालिका 1)

तालिका 2 से स्पष्ट है कि इन राज्यों में ग्रामीण महिला साक्षरता दर 20 के अंक को पार ही नहीं कर पाई। इसे 20 प्रतिशत से ऊंचा किए जाने के लिए जिला एवं ब्लाकों की साक्षरता की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। यदि देश की महिला साक्षरता की ओर दृष्टिपात किया जाए तो यह तथ्य सामने आता है कि यह 1951 में 7.93 प्रतिशत से बढ़कर 1991 में 36.26 प्रतिशत हो गई यानी 40 वर्षों में इसमें पांच गुना बढ़ोतरी हुई। यदि इस बढ़ोतरी को संतोषजनक माना जाए तो भी चारों हिन्दी राज्यों की कुल साक्षरता दर 36.26 प्रतिशत को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। इन राज्यों की महिला साक्षरता दर की एक विशेषता और है कि इनमें पुरुष साक्षरता दर से बहुत अधिक अंतर है। देखें तालिका 3।

तालिका 3
पुरुष तथा महिला साक्षरता दरों में भिन्नता तथा वृद्धि (1991)

राज्य	साक्षरता दर 1991		
	पुरुष	महिला	अंतर
बिहार	52.49	22.89	26.60
मध्य प्रदेश	58.42	28.85	29.57
राजस्थान	54.99	20.44	34.55
उत्तर प्रदेश	55.73	25.31	30.42
केरल	93.62	86.17	7.45
भारत	64.13	39.29	24.84

स्रोत : उपर्युक्त (तालिका 1)

इस प्रकार भारत की कुल साक्षरता दरों को देखने से स्थिति प्रगति की ओर प्रतीत होती है किन्तु इसका विश्लेषण राज्य स्तर तक ले जाने पर उपलब्धि काफी निम्न लगने लगती है, विशेषकर हिन्दी राज्यों में। इन राज्यों में भी यदि जिले के स्तर तक विश्लेषण किया जाए तो लगता है कि इन क्षेत्रों में अभी बहुत कुछ करना शेष है।

हिन्दी राज्यों में जिलेवार ग्रामीण महिला साक्षरता

1991 में हिन्दी राज्यों के अधिकांश जिलों में 10 ग्रामीण महिलाओं में से 8 निरक्षर हैं। राजस्थान में तो यह संख्या 9 तक पहुंची हुई है। तालिका 4 देखें।

तालिका 4
हिन्दी राज्यों की ग्रामीण महिला साक्षरता दर में जिलों की बारंबारता (1991)

राज्य	कुल जिले (ग्रामीण क्षेत्र)	साक्षरता दर (प्रतिशत में)				
		0-10	10-20	20-30	30-40	40-50
बिहार	42	1	26	15	—	—
मध्य प्रदेश	45	3	22	17	3	—
राजस्थान	27	15	11	1	—	—
उत्तर प्रदेश	63	7	27	20	7	2
कुल	177	26	86	53	10	2
भारत	446	27	107	99	82	74

स्रोत : उपर्युक्त (तालिका 1)

तालिका चार अनेक गंभीर तथ्यों को उद्घाटित करती है। यथा—भारत के कुल 27 जिले ऐसे हैं जहां ग्रामीण महिला साक्षरता 10 प्रतिशत से कम है और इनमें से 26 जिले हिन्दी राज्यों के हैं। इसके अतिरिक्त राजस्थान के तो 50 प्रतिशत से अधिक जिले 10 प्रतिशत से कम ग्रामीण महिला साक्षरता दर वाले हैं। इस प्रदेश के एक जिले को छोड़कर पूरा राजस्थान ग्रामीण महिला साक्षरता में 20 प्रतिशत से कम साक्षरता दर वाला राज्य है। बिहार में यद्यपि एक ही जिला 10 प्रतिशत से कम ग्रामीण महिला साक्षरता दर वाला है किंतु पूरे प्रदेश में यह साक्षरता दर 30 प्रतिशत से अधिक नहीं है। यद्यपि मध्य प्रदेश की महिला साक्षरता (चाहे वह किसी भी क्षेत्र की हो) तथा साक्षरता वृद्धि दर उत्तर प्रदेश से अधिक है किंतु अभी भी मध्य प्रदेश के किसी भी जिले में ग्रामीण महिला साक्षरता दर 40 प्रतिशत से अधिक नहीं है जबकि यह साक्षरता दर उत्तर प्रदेश के दो जिलों में 40 प्रतिशत से अधिक है।

साक्षरता दरों में लिंगगत तथा क्षेत्रगत अंतर

हिन्दी राज्यों की स्थिति तब और गंभीर प्रतीत होती है, जब यह ज्ञात होता है कि इन राज्यों में ग्रामीण क्षेत्र की तो साक्षरता दर कम है, चाहे वे महिलाएं हों या पुरुष और साथ ही महिला साक्षरता दर भी कम है चाहे वह ग्रामीण महिला की साक्षरता हो अथवा नगरीय महिला की। तालिका 5 देखें।

तालिका 5

हिन्दी राज्यों में 10 प्रतिशत से कम ग्रामीण महिला साक्षरता दर वाले जिलों की साक्षरता दरों में भिन्नता

राज्य/जिले	ग्रामीण साक्षरता दर		अंतर
	पुरुष	महिला	(2)-(3)
1. बिहार	48.31	17.95	30.36
किशनगंज	29.80	7.55	22.25
2. मध्य प्रदेश	51.04	19.73	31.31
शिवपुरी	41.86	9.36	32.50
झाबुआ	20.49	6.83	13.66
राजगढ़	40.65	9.46	31.19
3. राजस्थान	30.37	11.59	18.78
बीकानेर	37.59	8.84	28.75
चुरु	43.60	9.31	34.29
धौलपुर	47.13	9.89	37.24
सवाई माधोपुर	50.79	9.78	41.01
टोंक	45.68	9.48	36.20
जैसलमेर	37.92	4.71	33.21
जोधपुर	43.82	6.49	37.33
नागौर	45.76	9.75	36.01
बाड़मेर	31.83	4.20	27.63
जालौर	36.20	5.85	30.35
सिरोही	36.57	9.23	27.34
भीलवाड़ा	38.36	9.61	28.75
बंसवारा	33.70	8.87	24.83
बूंदी	40.65	9.39	31.26
झालवाड़	41.89	9.29	32.60
4. उत्तर प्रदेश	36.66	19.02	17.64
मुरादाबाद	36.51	9.71	26.80
रामपुर	28.30	8.06	20.24
बदायूं	30.54	8.11	22.43
बरेली	36.62	9.65	26.97
बहराइच	33.51	7.80	25.71
महाराजगंज	44.20	8.68	35.52

स्रोत : उपर्युक्त (तालिका 1)

तालिका 5 से स्पष्ट है कि मध्य प्रदेश के झाबुआ जिले में ग्रामीण पुरुषों की साक्षरता दर भी चारों राज्यों में सबसे कम है। राजस्थान के बाड़मेर तथा जैसलमेर में ग्रामीण महिलाओं में 100 में से 96 महिलाएं निरक्षर हैं।

हिन्दी राज्यों की ग्रामीण महिला साक्षरता को भली-भांति जानने के लिए यह उचित होगा कि जब हमने निम्नतम साक्षरता वाले जिलों की साक्षरता दरों को देखा है तो उच्चतम साक्षरता दर वाले जिलों से भी परिचित हों। देखें तालिका 6।

तालिका 6

हिन्दी राज्यों में ग्रामीण महिला साक्षरता की उच्चतम तथा निम्नतम दरें

राज्य	उच्चतम दर वाला जिला	उच्चतम दर	निम्नतम दर वाला जिला	निम्नतम दर	अंतर
बिहार	पटना	26.87	किशनगंज	7.55	19.32
मध्य प्रदेश	बालाघाट	36.27	झाबुआ	6.83	29.44
राजस्थान	झुनझुनू	22.01	बाड़मेर	4.20	17.81
उत्तर प्रदेश	गढ़वाल	47.08	गोरखपुर	7.23	39.85

स्रोत : उपर्युक्त (तालिका 1)

तालिका के अनुसार राज्यों को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं :

1. बिहार तथा राजस्थान : जहां दोनों दरों में अंतर कम है, साथ ही उच्चतम दर भी कम है।
2. मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश : जहां दोनों दरों में अंतर अधिक है, साथ ही उच्चतम दर भी अधिक है।

इसके अलावा बिहार और राजस्थान की उच्चतम दरें उतनी भी नहीं है जितनी मध्य प्रदेश व उत्तर प्रदेश की दोनों दरों की सीमाओं में अंतर है।

निष्कर्ष

हिन्दी राज्यों में ग्रामीण महिला साक्षरता बढ़ाने के लिए विशेष योजनाओं, प्रयत्नों एवं प्रयासों की अपेक्षा स्थिति की गंभीरता इस बात से स्पष्ट है कि भारत के कुल जिले जिनमें ग्रामीण महिला साक्षरता दर 10 प्रतिशत से कम है, उनमें से एक जिले को छोड़कर जो उड़ीसा में है सभी जिले इन चार हिन्दी राज्यों में हैं। बिहार राज्य का केवल एक जिला किशनगंज इस श्रेणी में है किन्तु राज्य में महिला साक्षरता दर में वृद्धि की स्थिति अच्छी नहीं है बल्कि ग्रामीण महिला साक्षरता की वृद्धि दर तो वहां सबसे नीचे है। पुरुष साक्षरता में यह राज्य राजस्थान से भी पिछड़ गया है क्योंकि पिछले दशक में पुरुष साक्षरता दर में इन चारों राज्यों में राजस्थान में सर्वाधिक वृद्धि हुई है।

हिन्दी राज्यों में ध्यान देने योग्य प्रथम श्रेणी में उन जिलों को रखा जा सकता है जिनके लगभग सभी ब्लाक 10 प्रतिशत से कम ग्रामीण महिला साक्षरता दर वाले हैं। बिहार के किशनगंज को इसी श्रेणी में रख सकते हैं क्योंकि यह बिहार का एकमात्र जिला है तथा राजस्थान के जैसलमेर, जोधपुर, बाड़मेर, मध्य प्रदेश में झाबुआ, उत्तर प्रदेश में रामपुर इसी श्रेणी में हैं।

द्वितीय श्रेणी में विशेष ध्यान देने के लिए उन जिलों को सम्मिलित किया जा सकता है जहां ग्रामीण पुरुष और ग्रामीण महिला दोनों की साक्षरता दर कम है। बिहार में किशनगंज, राजस्थान में बाड़मेर, जालौर, उत्तर प्रदेश में मुरादाबाद, रामपुर, बदायूं तथा बरेली जिले इस श्रेणी में रखे जा सकते हैं।

इस अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो रही है कि मध्य प्रदेश में महिला साक्षरता की प्रगति अच्छी है, इसे बरकरार बनाए रखना चाहिए। उत्तर प्रदेश में स्थिति बिगड़ रही है, उसे बिगड़ने से बचाने के लिए प्रयास किया जाना चाहिए। राजस्थान बिहार से अच्छी उन्नति कर रहा है, इसे बढ़ावा देकर ऊंची महिला साक्षरता दर की आशा की जा सकती है। विचारणीय तथ्य यह है कि आजादी के 50 वर्षों में हम महिला साक्षरता को 50 प्रतिशत तक भी नहीं पहुंचा पाए हैं तथा इस प्रकार के तथ्य सामने आ रहे हैं कि हिन्दी राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रों में महिला साक्षरता नगण्य-सी है। इस स्थिति से उबरना देश के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। इस चुनौती का सामना समग्रता के साथ किया जाना चाहिए अर्थात महिला साक्षरता को बढ़ाने के लिए सभी ओर से प्रयास होने चाहिए। ❑

कुरुक्षेत्र 40 वर्ष पहले

ग्राम-संकल्प का महत्व*

जयप्रकाश नारायण

यह सर्वमान्य बात है कि भारत गांवों का देश है। यहां की 80 प्रतिशत आबादी देहात में बसती है। यह भी स्वयंसिद्ध बात है कि जब तक सारे गांवों का विकास नहीं किया जाता, तब तक देश की सही मायने में उन्नति व समृद्धि नहीं हो सकती।

गांव के निवासी वहां से भाग कर शहरों में जा बसते हैं। शहरों में जो आकर्षण, साधन-सुविधाएं होती हैं, उनकी ओर वे प्रलोभित होते हैं। वे वहां काम की तलाश में जाते हैं। इसका कारण यही है कि गांव दिन-ब-दिन गरीब होते जा रहे हैं और उनमें उपयुक्त काम-धंधे के जरिये बहुत कम हैं। गांवों में यह जो तबाही फैलती जा रही है और वहां से उठकर लोग जो शहरों में आ बसते हैं, उसके कई कारण हैं। अगर हमारी पंचवर्षीय योजना के आयोजकों ने गांवों की इस परिस्थिति पर गंभीरतापूर्वक विचार किया होता तो योजना का स्वरूप तथा उसका अंतिम नक्शा ही दूसरा होता।

खादी तथा ग्रामोद्योग

यह सही बात है कि आज खादी और ग्रामोद्योग संबंधी कार्यक्रम सरकार की सहायता के जरिये देश के विभिन्न हिस्सों में लागू किए जा रहे हैं। गांवों के कल्याण व उनके विकास के लिए कई सरकारी व गैर-सरकारी संस्थाएं काम कर रही हैं। फिर हम यह महसूस करते हैं कि इसके बावजूद भी कमी है और जनता में जोश भरने व उन्हें एक होकर काम करने के लिए प्रोत्साहित करने के लिए जिस बात की जरूरत है, वह देखने में नहीं आती। इसका कारण है—आत्म-विश्वास और चरित्रबल की कमी। देश में जो भी योजना क्रियान्वित हो रही है, वह जनता में आगे बढ़ने के लिए आत्म-विश्वास जागृत करने में समर्थ नहीं हुई है।

जब खंड विकास अधिकारी, सघन क्षेत्र कार्यकर्ता और भूदान कार्यकर्ता गांवों में पहुंच कर ग्रामवासियों को शिक्षा देने लगते हैं, तब ग्रामवासी चकरा जाते हैं। जब ये कार्यकर्ता विकास के अलग-अलग पहलुओं पर महत्व देते हैं तो उनका समन्वय कर सकना ग्रामवासियों के लिए मुश्किल होता है और उन कार्यकर्ताओं की विभिन्न कार्यपद्धतियां उन्हें चक्कर में डाल देती है। यह बड़ी खुशी की बात है कि इन विभिन्न क्षेत्रों के कार्यकर्ताओं ने ग्रामवासियों से अधिक निकट संबंध स्थापित करने के लिए परस्पर अधिक सहयोग व समन्वय की जरूरत महसूस की है। यह बात नहीं है कि ये विभिन्न कार्यक्रम और आंदोलन परस्पर विरोधी हों या उनमें संयोजन नहीं हो सकता। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि ये अलग-अलग नदियां हैं जो धीरे-धीरे बढ़ती हुई समुद्र में मिलती हैं। पर ये नदियां छोटी नदियों के समान हैं जो महान नदी गंगा में मिलती हैं, जिसके प्रवाह की विशाल शक्ति के कारण लोग उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं।

भूदान और ग्रामदान आंदोलन, जिनके प्रवर्तक आचार्य विनोबा भावे हैं, इस गंगा के समान हैं। विनोबा जी पिछले 7 वर्षों से गांवों का दौरा कर रहे हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि उन्होंने शहरों की उपेक्षा की है। अगर कोई शहर उनके रास्ते में पड़ता है तो वे वहां जाते हैं और अपने आंदोलन के बारे में वहां के लोगों से बातें करते हैं। वह बड़ी निष्ठा से देश की सेवा कर रहे हैं। ग्रामदान, ग्राम संकल्प व ग्राम स्वराज के विचारों का प्रचार वह जनता में कर रहे हैं। ये ही जनशक्ति के निर्माण के आधार स्तंभ हैं।

सरकार की जो शक्ति व साधन-स्रोत आदि हैं, वे जनता की कुल शक्ति की तुलना में तिल के बराबर हैं। ऐसी परिस्थिति में सरकार से यह आशा करना कहां तक सही व उपयुक्त होगा कि वह जन-जीवन के हर क्षेत्र का हर काम स्वयं ही कर दे?

जनशक्ति

विनोबा जी की दृष्टि में तो जनता का मत व सहयोग ही सब कुछ है। उनका मंत्र है : "जनशक्ति जागृत होनी चाहिए, वह सब कुछ कर सकेगी"। आदर्श स्थिति तो यह है कि प्रशासन के दबाव को पूरी तरह दूर किया जाए और शक्ति का विभाजन व विकेंद्रीकरण किया जाए। यह लक्ष्य है कठिन। पर हम सबको उसकी पूर्ति के लिए प्रयास करना चाहिए। अपना लक्ष्य ऊंचा रखने पर ही हम अपनी शक्ति की परख कर सकते हैं और यह महसूस कर सकते हैं कि इस काम के लिए सामूहिक शक्ति की जरूरत होती है।

समस्या

तब कोई यह सवाल पूछ सकता है कि हम जनशक्ति कैसे जागृत कर सकते हैं? जमीन

(शेष पृष्ठ 36 पर)

*कुरुक्षेत्र, जून 1958 अंक से उद्धृत

कृषि श्रमिकों की समस्याएं

डा. मोहम्मद हारून*

कृषि श्रमिकों से हमारा तात्पर्य उन ग्रामीण मजदूरों से है जो वर्ष के अधिकांश समय तक खेतों पर या उनसे संबंधित धंधों में मजदूरी में लगे रहते हैं। कृषि अर्थशास्त्र के अनुसार, 'कृषि श्रमिक वह समूह है जो अपना श्रम कृषि कार्यों में लगा कर उसके बदले नकद या वस्तु के रूप में मजदूरी प्राप्त कर अपने श्रम का विक्रय करता है।' प्रथम कृषि श्रम जांच समिति के अनुसार, 'कृषि श्रमिक से तात्पर्य उन व्यक्तियों से है जो कृषि कार्य में किराये के मजदूर के रूप में कार्य करते हैं तथा वर्ष में आधे से अधिक दिनों तक उन्हें कृषि में ही कार्य किया हो।' द्वितीय कृषि श्रम जांच समिति के अनुसार 'कृषि श्रमिक से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जो न केवल फसलों के उत्पादन में काम पर रखा गया हो वरन जो अन्य कृषि संबंधी धंधों (यथा—पशुपालन, मुर्गीपालन, मत्स्य पालन आदि) में भी किराये के मजदूर के रूप में कार्य करता है।' जनगणना रिपोर्ट के अनुसार, 'कृषि श्रमिक वह व्यक्ति है जो केवल श्रमिक की भांति नकद, जिन्स या फसल के एक भाग के रूप में मजदूरी के भुगतान के बदले कार्य करता है। भूमि के संबंध में उसे कोई अधिकार नहीं होता और न वह फसलों को बोने आदि के संबंध में निर्णय कर सकता है तथा उसकी कोई जोखिम नहीं होती है।'

कृषि श्रमिक दो प्रकार के होते हैं—(1) **भूमिहीन श्रमिक**—ये वे श्रमिक हैं जिनके पास खेती करने के लिए कोई भूमि नहीं होती। वे किसी काश्तकार के यहां लगातार वर्ष भर कार्य करते हैं या भिन्न-भिन्न काश्तकारों के यहां कार्य करते रहते हैं। (2) **सीमांत कृषक**—ये वे श्रमिक होते हैं जिनके पास भूमि बहुत कम मात्रा में होती है। अत: यह अपना अधिकांश समय श्रमिकों के रूप में ही व्यतीत करते हैं।

भारत में स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद कृषि श्रमिकों की संख्या में आशातीत वृद्धि हुई है, जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है:

कृषि श्रमिकों की संख्या

वर्ष	कृषि श्रमिकों की संख्या (करोड़ में)
1951	2.8
1961	3.2
1971	4.7
1981	5.6
1991	7.5

*प्रवक्ता, भूगोल विभाग, शिबली नेशनल पी.जी. कालेज, आजमगढ़ (उ.प्र.)

कारण

कृषि श्रमिकों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं :

- जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता गया और दोषपूर्ण भूमि-व्यवस्था के कारण भूमि का केन्द्रीकरण होता चला गया। फलत: कृषि श्रमिकों की संख्या में वृद्धि होती चली गई।
- भारत में अधिकांश जोतें अनार्थिक हैं, जिनसे पूरे परिवार का भरण-पोषण भी नहीं हो पाता। अत: परिवार के कुछ सदस्य श्रमिक के रूप में कार्य करने के लिए विवश हो जाते हैं। ऐसा होने से कृषि श्रमिकों की संख्या में वृद्धि होती है।
- अधिकांश सीमांत कृषकों द्वारा ऋणग्रस्तता के कारण धीरे-धीरे भूमि का विक्रय कर दिया गया है और वे ऋणी कृषक, कृषि श्रमिक बन गए हैं।
- योजना काल में सरकारी फार्मों की संख्या में वृद्धि हुई है जिनमें कृषि श्रमिकों को रोजगार मिल जाता है। इस कारण भी कुछ वृद्धि हुई है।
- कुटीर तथा हस्तकला उद्योगों के पतन के कारण इनमें लगे हुए व्यक्तियों को कोई वैकल्पिक रोजगार न मिलने के कारण ये लोग गांव में ही मजदूरी करने के लिए विवश हो गए हैं। परिणामत: कृषि श्रमिकों की संख्या में वृद्धि हुई है।
- भारत में बेरोजगारी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। रोजगार सुविधाएं सीमित हैं। ऐसी स्थिति में बेरोजगार व्यक्ति कृषि श्रमिक के रूप में कार्य करने को बाध्य हो जाता है जिससे कृषि श्रमिकों की संख्या में वृद्धि हो रही है।
- कृषि श्रमिक निरक्षर होते हैं। शिक्षा के अभाव में वे हीन भावना से ग्रसित होते हैं। वे अपने बच्चों को भी रोजगार तथा आय का साधन-स्रोत समझने लगते हैं और उन्हें ज्ञानार्जन की अपेक्षा कार्य करने की ओर उन्मुख तथा प्रोत्साहित करते हैं। इससे कृषि श्रमिकों की संख्या में वृद्धि हुई है।
- मानसून की अनिश्चितता, सूखा, अकाल, बाढ़, ओला वृष्टि, तूफान आदि परिस्थितियां भी छोटे कृषकों को बड़े कृषकों के यहां श्रमिक के रूप में कार्य करने के लिए विवश कर देती हैं। ऐसी स्थिति में भी कृषि श्रमिकों की संख्या में वृद्धि होना स्वाभाविक है।

कृषि श्रमिकों की समस्याएं

- कृषि श्रमिकों की मुख्य समस्या मौसमी बेरोजगारी की है अर्थात इन श्रमिकों को पूरे वर्ष कार्य न मिल कर केवल कृषि काल में ही काम मिलता है, शेष दिनों में वे बेरोजगार रहते हैं। वर्तमान समय में कृषि में जैसे-जैसे आधुनिक मशीनों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है, कृषि श्रमिकों की बेरोजगारी की समस्या भी बढ़ती जा रही है।

- कृषि श्रमिकों की दूसरी प्रमुख समस्या आवास की है। साधारणतया ये श्रमिक, मालिक या ग्राम समाज की भूमि पर उसकी अनुमति से झोपड़ी बनाकर रहते हैं। इन कच्ची झोपड़ियों में सफाई आदि की समुचित व्यवस्था नहीं होती। फलतः श्रमिकों तथा उनके बच्चों का स्वास्थ्य खराब रहता है।

- इन श्रमिकों के कार्य करने के घंटे निश्चित नहीं होते। उनमें अनियमितता होती है। इन श्रमिकों से प्रायः प्रातःकाल से सायंकाल तक तथा कभी-कभी देर रात गए तक काम लिया जाता है। इसके अलावा फसल, मौसम और कार्य के अनुसार इनके समयों में परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार कृषि श्रमिकों से नियत समय से कहीं ज्यादा काम लिया जाता है और मजदूरी बहुत कम दी जाती है।

- मजदूरी कम होने के कारण वे सदा ऋणग्रस्त रहते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि उन्हें किसान या महाजन की बेगार करनी पड़ती है। उनकी स्थिति गुलामों जैसी होती है, फिर भी वह मूलधन नहीं चुका पाते। यदि कभी गांवों में सूखा, बाढ़, अकाल आदि से फसल नष्ट हो जाती है तो सहायक उद्यमों के अभाव में इन कृषि श्रमिकों को जीवन निर्वाह का कोई अन्य साधन नहीं मिल पाता है, जिसके कारण वे ऋणग्रस्तता में और डूब जाते हैं।

- मजदूरी कम होने के कारण कृषि श्रमिकों का जीवन स्तर भी बहुत निम्न स्तर का होता है। वे कम मजदूरी के कारण रोटी, कपड़ा, मकान तथा अन्य न्यूनतम आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पाते जिससे वे आगे चलकर निराशा, कुंठा और अंतर्द्वन्द्व के शिकार हो जाते हैं, उनकी कार्य क्षमता घट जाती है।

- कृषि श्रमिक अशिक्षित तथा अनभिज्ञ हैं, साथ ही देश के दूर-दराज के गांवों में फैले हुए हैं। परिणामतः उनमें संगठन का अभाव है। संगठन के अभाव में वे अपनी मजदूरी बढ़वाने, कार्य के घंटे नियमित कराने, बेगार बंद कराने आदि की आवाज तक नहीं उठा पाते हैं।

सरकारी प्रयास

भारत सरकार द्वारा स्वतंत्रता-प्राप्ति से लेकर आज तक कृषि श्रमिकों की विभिन्न समस्याओं की ओर ध्यान दिया जाता रहा है। विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं, कानूनों तथा परियोजनाओं के माध्यम से कृषि श्रमिकों के सामाजिक-आर्थिक स्तर को सुदृढ़ करने का प्रयास किया जाता रहा है। सरकार द्वारा किए गए प्रमुख प्रयत्न इस प्रकार हैं :

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 को कृषि पर भी लागू किया गया है जिसके अंतर्गत राज्यों में कृषि श्रमिकों को मिलने वाली मजदूरी की सीमा निर्धारित कर दी गई। न्यूनतम मजदूरी को मूल्य सूचकांकों को परिवर्तन के साथ बढ़ाया भी जाता है। सन् 1976 में बंधुआ मजदूर उन्मूलन अधिनियम पारित कर बंधुआ मजदूर प्रणाली गैर-कानूनी घोषित की गई है जिसके फलस्वरूप अब कोई भी व्यक्ति ऋणों के भुगतान के लिए मजदूर के रूप में कार्य करने को बाध्य नहीं हो सकता।

राज्यों ने उन भूमिहीन श्रमिकों, जिनकी आय 2,400 रुपये वार्षिक या इससे कम है, को पुराने ऋणों से मुक्ति दिलाने के उद्देश्य से कानून बनाए हैं जिनके अनुसार अब इस प्रकार के ऋणों की वसूली नहीं हो सकती। विभिन्न राज्यों में जमींदारी प्रथा उन्मूलन के फलस्वरूप जो अतिरिक्त भूमि बची थी, उसे भूमिहीनों में बांट दिया गया है। भूदान आंदोलन के अंतर्गत भी कुछ भूमि भूमिहीन श्रमिकों में वितरित की गई।

कृषि श्रमिकों को वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए कृषि सेवा समितियों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गई। छोटे तथा सीमांत कृषकों तथा भूमिहीन श्रमिकों की सहायता के लिए 'छोटे कृषक विकास एजेन्सी', 'सीमांत कृषक तथा कृषि श्रमिक विकास एजेन्सी' और 'समन्वित सूखी भूमि कृषि विकास कार्यक्रम' लागू किए गए थे, लेकिन अब समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत इन श्रमिकों की दशा सुधारने का प्रयास किया जा रहा है।

इसी प्रकार ग्रामीण भूमिहीन श्रमिकों के लिए पहले 'काम के बदले अनाज कार्यक्रम' लागू किया गया था, जिसे बाद में 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम' में बदल दिया गया। इसके बाद ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम लागू किया गया जिन्हें अब जवाहर रोजगार योजना में मिला दिया गया है। केन्द्र सरकार ने विद्यमान कृषि श्रमिक संबंधी कानूनों तथा व्यवस्थाओं की समीक्षा और विस्तृत अधिनियमों की रूपरेखा बनाने के लिए एक स्थायी समिति भी गठित की है।

इसके अतिरिक्त विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में भी भारत सरकार ने कृषि श्रमिकों के उत्थान के लिए खेतिहर श्रमिकों को बसाने, मकान की जगह दिलाने, भूमि दिलाने, रोजगार देने जैसी कई विशेष परियोजनाएं शुरू की हैं।

उपाय

कृषि श्रमिकों की समस्याएं हमारे लिए एक चुनौती है और इन समस्याओं का समुचित समाधान खोजने का उत्तरदायित्व संपूर्ण समाज पर है। इस संबंध में निम्नलिखित उपाय जरूरी हैं:

- यद्यपि सभी राज्यों में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम लागू हैं जिनमें कृषि श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी देने का प्रावधान है, लेकिन इन अधिनियमों का क्रियान्वयन समुचित तरीके से नहीं हो रहा है और उन्हें कम मजदूरी दी जा रही है। अतः इन अधिनियमों को सही ढंग से क्रियान्वित करने की जरूरत है।

- कृषि श्रमिकों के कार्य के घंटे निर्धारित किए जाने चाहिए और यदि मालिक उनसे निर्धारित घंटों से अधिक कार्य लेता है तो अतिरिक्त मजदूरी देने की व्यवस्था होनी चाहिए।

- कार्य के घंटे निर्धारित करने के साथ-साथ कार्य-दशाओं में भी सुधार किया जाना चाहिए।

(शेष पृष्ठ 43 पर)

लाखों गांवों में बसे हुए लगभग 8-10 करोड़ ग्रामीण शिल्पकारों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराकर बेरोजगारी की समस्या का समाधान करना आवश्यक तथा महत्वपूर्ण काम है। योजना आयोग ने इसके लिए 60 हजार करोड़ रुपये खर्च करने की योजना बनाई है। इस काम के लिए अनेक संस्थाएं स्थापित हुई हैं और केंद्र सरकार भी विशेष योजनाओं के माध्यम से विभिन्न राज्यों के गांव-गांव में पहुंचने की चेष्टा कर रही है। उदाहरणतया जवाहर रोजगार योजना, प्रधानमंत्री रोजगार योजना और ट्राइसेम आदि योजनाएं इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर शुरू की गई हैं। खादी ग्रामोद्योग आयोग तथा पिछड़े राज्यों के खादी ग्रामोद्योग बोर्ड भी इस व्यापक प्रयास का भाग हैं।

खादी ग्रामोद्योग आयोग के प्रयास

उल्लेखनीय है कि खादी ग्रामोद्योग आयोग ने खादी के शिल्प को सुधारने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है। आयोग के पास तीस विभागीय प्रशिक्षण केंद्र हैं, जिनके द्वारा विकसित यांत्रिकी को कारीगरों तक पहुंचाया जा रहा है। पिछले 40 वर्षों में आयोग ने लाखों लोगों को रोजगार देने में सहायता दी है। खादी क्षेत्र में काम पाने वालों में 20 प्रतिशत महिलाएं हैं जिनमें से कुछ पूरे दिन काम करती हैं और कुछ आधे दिन या उससे भी कम। अब यह प्रयास किया जा रहा है कि खादी के अंतर्गत कुछ आधुनिक और ज्यादा आकर्षक माल तैयार किया जाए जो युवाजनों को अपनी ओर आकृष्ट करे ताकि अधिक से अधिक लोगों को रोजगार दिलाया जा सके।

उपर्युक्त परिस्थिति में ग्रामीण बेरोजगारी की भयंकर समस्या के समाधान के लिए केंद्र सरकार ने 1993 में एक उच्च स्तरीय समिति का भी गठन किया था। इसकी अध्यक्षता तत्कालीन प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव ने की थी। इस समिति की राय थी कि ग्रामोद्योगों को फैलाने से ज्यादा से ज्यादा लोगों को रोजगार दिया जा सकता है। अत: इस समिति ने ग्रामोद्योगों तथा खादी के रोजगार बढ़ाने की शक्ति को 7 प्रतिशत के अनुपात से रखा था। उप-समिति ने यह लक्ष्य भी तय किया था कि खादी का उत्पादन दो गुना बढ़ाने के साथ-साथ ढाई लाख नए रोजगार पैदा करने हैं। ग्रामोद्योगों के मामले में साढ़े सत्रह लाख का लक्ष्य था। इस कार्यक्रम के अनुसार 5,700 करोड़ रुपये जुटाने थे जिसके लिए सरकार के कोष से एक-तिहाई पूंजी उपलब्ध कराई जाती थी और बैंकों से दो-तिहाई। इसके लिए बैंकों का एक समूह बना दिया गया था जिसने ब्याज की आम दर पर आठ वर्ष में अदायगी की शर्त पर एक हजार करोड़ रुपया देना मंजूर किया था। उसमें से लगभग आधा ऋण संस्थाओं द्वारा लिया गया।

नई योजना

इस संदर्भ में उच्च स्तरीय समिति की सिफारिश के बाद एक नई योजना लागू की गई है जिसके अनुसार गांव का कोई भी उद्यमी व्यक्ति 10 से 24 लाख रुपये की परियोजना आयोग को दे सकता है। 10 लाख रुपये तक की परियोजना पर 24 प्रतिशत पूंजी अनुदान के रूप में मिलती है और अनुसूचित जातियों, अल्पसंख्यकों, जनजातियों, महिलाओं, भूतपूर्व सैनिकों और विकलांगों के लिए 5 प्रतिशत की अतिरिक्त छूट दी जाती है। बैंकों द्वारा ऐसी परियोजना के लिए 65 प्रतिशत की पूंजी उधार दी जाती है। संस्थाओं को 10 प्रतिशत अनुदान भी मिलता है।

ग्रामोद्योग का विकेंद्रीकरण : दूरगामी प्रभाव अपेक्षित

डा. शुभंकर बनर्जी

उपर्युक्त नई योजना के पहले चरण में उद्यमियों की यह शिकायत थी कि पहले तो 4 प्रतिशत ब्याज पर पूंजी उधार दी जाती थी परंतु अब ऐसा नहीं है। आयोग द्वारा दिए जाने वाले अनुदान को मिला कर बैंक ब्याज, परियोजना की लागत पर 8 या 9 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होता क्योंकि आज बैंक ब्याज की सामान्य दर भी 13 प्रतिशत ही रह गई है।

यह भी उल्लेखनीय है कि जब तक योजना ग्रामीण व्यक्ति तक नहीं पहुंचेगी, तब तक उसका वास्तविक लाभ भी प्राप्त नहीं होगा। इसके अलावा आयोग के राज्यीय कार्यालय, मुख्य कार्यालय या केंद्रीय कार्यालयों के बार-बार चक्कर लगाने से उद्यमी का साहस वैसे ही टूट जाता है या उसका उत्साह कम हो जाता है। अत: यह भी जरूरी है कि बैंकों के साथ मिलकर ऐसी स्थिति बनाई जाए ताकि उद्यमी को किसी भी बैंक से स्थानीय तौर पर सहायता मिल सके। इसका एकमात्र उपाय विकेंद्रीकरण के रूप में उभर कर आया।

बैंकों में ऋण की व्यवस्था

इस परिप्रेक्ष्य में केंद्र सरकार के उद्योग मंत्रालय, भारतीय रिजर्व बैंक तथा खादी ग्रामोद्योग आयोग के प्रयासों की वजह से सभी ने इस योजना को मंजूर किया। बाद में आयोग ने 32 करोड़ रुपये विभिन्न बैंकों को दिये। जिस बैंक ने जितना काम करना मंजूर किया या अपना लक्ष्य तय किया, उसी हिसाब से यह पूंजी बैंकों को आबंटित की गई। किसी भी उद्यमी को कुल परियोजना की पूंजी पर आयोग का अनुदान केवल 25 या 30 प्रतिशत ही प्राप्त होता है जबकि उसके मुकाबले बैंकों को उन्हें 65 प्रतिशत उधार देना होता है। आयोग के 132 करोड़ रुपये का उपयोग करने में बैंकों को लगभग 375 करोड़ रुपये उधार देने होंगे। लगभग 500 करोड़ रुपया इस प्रकार ग्रामीण उद्योगों में पहुंच सकता है। साधारणतया अर्थशास्त्रियों का यह अनुमान है कि 30 रुपये पर एक ग्रामीण रोजगार उत्पन्न हो सकता है। उच्च स्तरीय समिति का अनुमान भी लगभग यही था। इस आधार पर कहा जा सकता है कि डेढ़ लाख अतिरिक्त रोजगार गांवों में पैदा हो सकते हैं। इस विकेंद्रीकरण की योजना को सफल बनाने के उद्देश्य से कारीगरों को बैंकों के साथ जोड़ा जा सकता है। सितंबर 1997 के तीसरे सप्ताह में नागपुर में राष्ट्रीय कारीगर पंचायत का आयोजन हुआ था जिससे यह बात तय हुई थी कि सभी शिल्पों के कारीगरों को एकजुट किया जाएगा ताकि विकेंद्रीकरण की योजना को और अधिक मजबूती प्रदान की जा सके।

पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका

दरअसल पंचायती राज तो विकेंद्रीकरण की धुरी है। अत: ग्रामोद्योगों को फैलाने के इस प्रयास में उनकी भागीदारी हासिल की जानी चाहिए। ग्राम तथा मंडल पंचायत समितियां इस कार्यक्रम में आधारभूत भूमिकाएं निभा सकेंगी। परंतु शुरुआत जिला परिषदों से की जा रही है ताकि वे सक्रिय होकर निचले स्तरों की संस्थाओं की भागीदारी का प्रबंध करने के सुझाव दें। पंचायती राज संस्थाएं ग्रामीणों में प्रचार करके उन्हें जानकारी दे सकती हैं, बैंकों और उद्यमियों के बीच पुल का काम भी कर सकती हैं और पूरे काम-काज की देखभाल भी कर सकती हैं। बैंकों को बराबर अपनी पूंजी की वापसी की चिंता रहेगी, जो स्वाभाविक है और वे उधार देते समय उन कसौटियों का इस्तेमाल करना तो चाहेंगे ही, जिनके आधार पर सामान्यत: उधार मंजूर किया जाता है। यह भी सत्य ही है कि भ्रष्टाचार, गैर-जवाबदेही और विलम्ब या आना-कानी को रोकने में पंचायती राज संस्थाएं अपना योगदान दे सकती हैं।

इसी प्रकार की भूमिका गैर-सरकारी या स्वैच्छिक संस्थाओं द्वारा निभाई जा सकती है। राजनैतिक दलों के कार्यकर्ता भी प्रचार-प्रसार तथा लोक शिक्षण का कार्य कर सकते हैं। यह एक ऐसा कार्य है जिसमें उसके बाद भी अनेक प्रश्न उठ सकते हैं। अत: इन तथ्यों पर ध्यान देना भी जरूरी है:

- मंडल स्तर पर कारीगरों की सूचियां बनाई जाएं। जिस शिल्प के ज्यादा कारीगर हों, वहां प्रशिक्षण का इंतजाम किया जाए। यह भी हो सकता है कि इस प्रक्रिया में उन कारीगरों के लिए एक सामान्य सुविधा केंद्र जैसे—कुम्हारों के लिए भट्टी भी स्थापित की जा सकती है। यदि वहां विपणन की स्थितियां भी पैदा की जा सकें, तो पास-पड़ोस के शिल्पी भी वहीं आ जाएंगे। अत: शिल्प विशेष का केंद्र जैसा विकास हो सकता है।
- इसके अलावा शिल्प कला के प्रशिक्षण के साथ उसका विकास और ऐसी यांत्रिकी का शोध, जिसमें शारीरिक कष्ट घटे, भी चलने चाहिए।
- विभिन्न राज्यों में कुछ केंद्रों पर ग्रामोद्योगों के ऐसे गोदाम भी बनाए जा सकते हैं, जहां व्यापारी माल उठा सकें।
- इस बात को भुलाया जाना भी उचित नहीं है कि गुणवत्ता और विविधता आधारित आरक्षण के बिना विपणन संभव नहीं होगा। देहाती माल पास-पड़ोस में ज्यादा खपे, इसकी परिपाटी डालनी जरूरी है। कम-से-कम तीन-चौथाई माल तो उसी प्रकार खपना चाहिए।

विकेंद्रीकरण की सफलता के लिए उपर्युक्त बातें आवश्यक हैं। बैंकों के साथ आपसी बातचीत केंद्र तथा राज्य स्तरों पर तो होती ही हैं, ताकि आपसी विवादों, शिकायतों को सुलझाया जा सके, परंतु हो सके तो जिला स्तरों पर भी इसका प्रबंध होना चाहिए। जिलाधीश जिलों में जिला परिषद अध्यक्षों के साथ मिलकर प्रधानमंत्री रोजगार योजना और समन्वित ग्रामीण विकास योजना के ब्यौरे का लेखा-जोखा प्रतिमाह लेते हैं। वे खादी ग्रामोद्योग की इस विकेंद्रित योजना के निरीक्षण की जिम्मेदारी भी ले लें, तो यही सर्वाधिक उचित होगा और राज्य बोर्डों के जिला अधिकारी इस संबंध में आयोग का प्रतिनिधित्व भी कर सकते हैं।

अत: यह कहना भी उचित ही है कि विकेंद्रीकरण एक नया प्रयोग है और ऐसी आशा की जानी चाहिए कि यह सफलता के साथ ही चलेगा। ग्रामोद्योग के विकेंद्रीकरण का यह प्रयास काफी महत्वपूर्ण है तथा इसके दूरगामी प्रभाव भी अपेक्षित हैं। साथ ही समाज के सभी वर्ग के जिम्मेदार व्यक्तियों से सहयोग अपेक्षित है। ❑

यदि तुम्हारा हृदय पवित्र है, तो तुम्हारा आचरण भी सुन्दर होगा, यदि आचरण सुन्दर है तो तुम्हारे घर में शांति रहेगी, यदि घर में शांति है तो राष्ट्र में सुव्यवस्था रहेगी और यदि राष्ट्र में सुव्यवस्था है तो समस्त विश्व में शांति और सुख रहेगा।

बाल भारती
बच्चों की संपूर्ण पत्रिका

रोचक कहानियां, मनभावन कविताएं, जानकारी भरे लेख, मजेदार चित्रकथाएं और कार्टून – जो मनोरंजन भी करें, ज्ञान भी बढ़ाएं और प्रेरणा दें – अच्छा और सच्चा बनने की।

न भूत-प्रेत, न जादू-टोना, न बेईमानी का 'शॉर्ट कट', न आलस के हवाई किले... न किस्मत का रोना। 'बाल भारती' सिखाए वैज्ञानिक समझ से चीजों को परखना और आगे बढ़ते जाना।

बाल भारती - बच्चों को लुभाए, बड़ों को भी पसंद आए।

गौरवशाली प्रकाशन का 50वां वर्ष
जून 1948 से निरंतर प्रकाशित

एक प्रति : 5 रुपये
चंदे की दरें : वार्षिक–50 रुपये, द्विवार्षिक–95 रुपये, त्रिवार्षिक–135 रुपये

पत्रिका मंगाने के लिए सहायक व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार), प्रकाशन विभाग, पूर्वी ब्लॉक–4, लेवल–7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली–110066 के नाम बैंक ड्रॉफ्ट/मनीऑर्डर/पोस्टल ऑर्डर भेजें।

समस्याएं ग्रामीण बालकों की

दीपक कुमार सिन्हा

आज के बच्चे कल के भविष्य तथा राष्ट्र के भावी नवनिर्माता और अविष्कारक हैं। परंतु आने वाली नई पीढ़ी, जो मुख्य रूप से गांवों में रहती है, स्वतंत्रता-प्राप्ति के पचास वर्ष बाद भी अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। नवीनतम आंकड़ों के अनुसार देश में लगभग 32 करोड़ बच्चे हैं, जिनमें से लगभग 80 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले अधिकांश बच्चों की स्थिति काफी दयनीय है। यहां तक कि उनमें से अधिकतर बच्चों को दो जून ठीक से खाना तक नहीं मिलता।

एक ओर जहां उन्हें सामान्य सुविधा तक नहीं मिल पाती हैं, वहीं दूसरी ओर वहां के सामाजिक रीति-रिवाज और प्रथाएं कुछ ऐसी हैं, जो उनके विकास में बाधक हैं।

स्वास्थ्य की समस्या

ग्रामीण बालकों की सबसे प्रमुख समस्या उनके अस्तित्व अर्थात जीवन-रक्षा की है। समुचित देख-रेख के अभाव में अधिकतर बच्चे जन्म के कुछ समय बाद ही मर जाते हैं। गांवों में चिकित्सा की सुविधाएं प्राय: नगण्य हैं। कहीं-कहीं प्राथमिक चिकित्सा केंद्र और रेफरल अस्पताल हैं भी, तो वहां दवाएं आदि आमतौर पर उपलब्ध नहीं होतीं। अत:- चिकित्सा के अभाव में भी अधिकतर बच्चे एक से चार वर्ष की अल्पायु में ही मृत्यु के शिकार हो जाते हैं।

इसके अलावा पौष्टिक भोजन और सफाई व्यवस्था की कमी तथा मकानों की तंगी का भी उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है और वे कई तरह की बीमारियों के चंगुल में फंस जाते हैं। फलस्वरूप उनका शरीर कमजोर हो जाता है और विकलांगता, मानसिक असंतुलन तथा कई ऐसी भयंकर बीमारियों से ग्रस्त हो जाते हैं, जिनसे जीवन भर उबर नहीं पाते। संतुलित भोजन के अभाव में असंख्य बच्चे आंखों की ज्योति खो बैठते हैं। अत: उनकी दुनिया आधी-अधूरी रह जाती है।

साथ ही गर्भवती महिलाओं को पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक आहार न मिल पाना भी शिशुओं की असामयिक मृत्यु तथा उनके रोगी बनने का मुख्य कारण है। चिकित्सकों के अनुसार गर्भावस्था में महिलाओं को आवश्यक विटामिन और कैल्शियम आदि से युक्त आहार नहीं मिलने से अविकसित बच्चों का जन्म होता है।

शिक्षा की समस्या

वर्तमान समय में हमारे देश में स्कूल जाने वाले बच्चों की संख्या लगभग साढ़े तेरह करोड़ है, जबकि उनके लिए स्कूल मात्र 7,17,000 हैं। अभी 2,80,00,000 बच्चे स्कूल नहीं जा पाते हैं। इनमें पहली से पांचवीं कक्षा तक पहुंचते-पहुंचते आधे छात्र पढ़ाई छोड़ देते हैं। शेष आधे में से 85 प्रतिशत आठवीं से दसवीं कक्षा तक पहुंचते-पहुंचते पढ़ाई छोड़ देते हैं। अत: शहरी बच्चों के मुकाबले ग्रामीण बच्चों की पढ़ाई-लिखाई एक ज्वलंत समस्या है। शहरों में तो एक से एक अच्छे स्कूल हैं, लेकिन गांवों की स्थिति पढ़ाई-लिखाई के मामले में बहुत निम्न-स्तरीय है। जबकि संविधान के नीति-निर्देशक सिद्धांतों में भी चौदह वर्ष तक के बच्चों के लिए नि:शुल्क शिक्षा उपलब्ध कराने की बात कही गई है, लेकिन ऐसा नहीं हो सका है। उसके लिए अनेक योजनाएं बनी हैं, बड़ी-बड़ी घोषणाएं हुई हैं, फिर भी ग्रामीण बच्चों की शिक्षा के लिए कोई सुदृढ़ और ठोस कदम नहीं उठाया गया है। अभी भी देश के सैकड़ों ऐसे गांव हैं, जहां कोई प्राथमिक विद्यालय नहीं है। जहां है भी तो उनके भवन अत्यंत पुराने और क्षतिग्रस्त हैं। मरम्मत आदि के अभाव में वहां स्कूल सही ढंग से नहीं चल सकते।

ग्रामीण क्षेत्रों में मजदूरी करने वाले लोगों के बच्चे प्राय: स्कूल में भर्ती नहीं किए जाते और छोटी उम्र में ही परिवार वालों के साथ काम करने लगते हैं। स्कूल में दाखिला लेकर पढ़ने के बजाय वे अपने माता-पिता के साथ भी बचपन से मजदूरी करने को विवश होते हैं। फलस्वरूप ऐसी परिस्थिति में बहुत कम ग्रामीण बच्चे ही पढ़ाई पूरी कर पाते हैं। पहली कक्षा में दाखिला लेने वाले सौ बच्चों में से मात्र पचास तीसरी-चौथी कक्षा तक और तीस आठवीं कक्षा तक ही पहुंच पाते हैं।

लड़कियों की पढ़ाई पर पैसा खर्च करना ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी पानी में पैसे फेंकने के समान समझा जाता है। वहां लोगों की धारणा है कि बेटी चाहे पढ़ी-लिखी हो या नहीं, उसे तो चूल्हा ही फूंकना है। दूसरी समस्या यह है कि बहुत कम उम्र में ही उन्हें घर-गृहस्थी का बोझ दे दिया जाता है। लड़की 10-11 वर्ष की हुई नहीं कि उसका घर से बाहर निकलना बंद हो जाता है। मां-बाप खेती या मजदूरी करने गए तो बेटी ही अपने छोटे-छोटे भाई-बहनों की देखभाल करेगी और खाना बनाने का कार्य भी संभालेगी।

इन सब विपरीत परिस्थितियों के साथ ही बच्चों की अधूरी शिक्षा का एक कारण यह भी है कि गांव के लोग या तो शिक्षा के महत्व को समझते नहीं हैं या शिक्षा की उपयोगिता पर उनका विश्वास नहीं है। दूसरी ओर यह भी बात है कि एक बार अध्यापक की मार खाने या कक्षा में फेल हो जाने या परीक्षा में नकल करते समय पकड़े जाने पर अपने को अपमानित महसूस कर ग्रामीण बालक स्कूल जाना बंद कर देते हैं। ऐसी परिस्थिति में ग्रामीण क्षेत्रों में पुन: स्कूल भेजने की ओर उन बच्चों के मां-बाप ध्यान नहीं देते। परिणामस्वरूप वे बच्चे जो कल के राष्ट्र-निर्माता हो सकते थे, अब या तो मूंगफली बेचते हैं या इधर-उधर मारे-मारे भटकते हैं।

शिक्षा का पाठ्यक्रम भी शहरी जीवन व्यवस्था पर आधारित है। नतीजा यह होता है कि गांवों के सुखी-संपन्न घरों के बच्चे भी शहरों में रहकर ही

अपनी पढ़ाई पूरी कर पाते हैं और इसके बाद उनके मन में गांव के प्रति उपेक्षा की भावना पनपने लगती है। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले बालक अपनी दुविधापूर्ण मानसिक स्थिति के कारण अपना रास्ता चुनने में विफल रह जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले निर्धन तबके के लोगों के बच्चे ऊंचे ओहदे पर पहुंचने का सपना ही पालते रह जाते हैं।

बाल विवाह

ग्रामीण क्षेत्रों में बाल-विवाह की प्रथा अभी भी प्रचलित है, जबकि इसकी रोकथाम के लिए 1930 में ही शारदा एक्ट तथा बाल विवाह नियंत्रण कानून लागू किया गया। मगर इसे सख्ती से लागू न किए जाने के कारण इतने वर्ष बाद भी बाल-विवाह की प्रथा अस्तित्व में है। कई राज्यों में तो बच्चों की शादियों के सामूहिक आयोजन धूमधाम से करके कानून को अंगूठा दिखाया जाता है।

छोटी उम्र में ही ग्रामीण सामाजिक प्रथा के अनुरूप विवाह करके नन्हे बालकों के कंधों पर घर-गृहस्थी की जिम्मेदारी डाल दी जाती है। विवाह जैसी बड़ी जिम्मेदारी से बालक-बालिकाओं का बचपन जो कि खेलने-कूदने, पढ़ने-लिखने के लिए होता है, घर-गृहस्थी के चक्कर में पिस जाता है।

समाधान के उपाय

ग्रामीण बालकों की इस भीषण समस्या का समाधान और गांवों के समग्र विकास के लिए बहुमुखी योजना बनाकर उसे प्रभावी ढंग से लागू किया जाना चाहिए। बच्चों की शिक्षा, बाल-विवाह आदि जैसी भीषण एवं ज्वलंत समस्याओं पर सामाजिक कार्यकर्ताओं, स्वयंसेवी संगठनों और राजनीतिक दलों को अनवरत प्रयास करना चाहिए ताकि छोटी उम्र में बड़ी जिम्मेदारियों से बाल वर-वधुओं को मुक्ति दिलाई जा सके। शहर में रहने वाले लोगों के मन में गांव के प्रति हीन भावना और ग्रामीणों के बीच पलायन की वृत्ति को व्यापक प्रचार-प्रसार द्वारा समाप्त नहीं किया जा सका तो ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले कमजोर वर्ग के लोगों के बाल-बच्चे शिक्षा प्राप्ति में सफल नहीं हो सकेंगे तथा उनके जीवन की खुशियां 'बालू का घर' बनकर रह जाएंगी। जरूरत इस बात की है कि ग्रामीण बाल कल्याण के उद्देश्य को सार्थक करने वाले संगठनों का गठन किया जाए और ऐसे संगठनों के प्रयास सार्थक बनाने के लिए प्रशासन सभी प्रकार की सुविधाएं मुहैया कराए। ऐसे कार्यों में सहायता के लिए स्वयंसेवी संस्थाएं भी आगे आ सकती हैं। ❑

(पृष्ठ 29 का शेष)

ग्राम-संकल्प का महत्व

मिल्कीयत के मसले को ही ले लीजिए। आप एक गांव का ही उदाहरण लीजिए। 4,000 एकड़ भूमि में से करीब 1,700 एकड़ भूमि पर 20 परिवारों की मिल्कीयत है। किसी-किसी के पास निजी जमीन बिल्कुल नहीं है। जब फसल कटती है और जब फसल की उत्पत्ति में वृद्धि होती है, तब उसका बंटवारा समान रूप से नहीं होता। इसलिए यह जरूरी है कि गांव के सारे धन-साधन व स्रोत पर, जिसमें भूमि भी शामिल हो, सबका समानाधिकार होना चाहिए। सबकी भलाई के लिए उक्त सब साधनों को एक में मिलना चाहिए। ऐसा करने से नई शक्ति पैदा होगी और जनता में विकास के प्रति बड़ा उत्साह फैलेगा। इससे गांव का स्वरूप ही बदल जाएगा। तब गांव के नवयुवक बड़े-बड़े औद्योगिक नगरों की ओर भागना छोड़ देंगे और गांव ही सभी प्रगतियों का केंद्र बन जाएगा। यह तभी संभव हो सकता है, जबकि लोग कुछ त्याग करने का संकल्प करें। इस तरह यह समस्या नैतिक और आध्यात्मिक है। इसका चरित्रबल से भी निकट संबंध है।

संग्रह क्यों

लोग संग्रह करते हैं। इसका कारण यही है कि वे भविष्य के लिए चिन्ता करते हैं और उन्हें उसका खतरा बना रहता है। पर जो आदमी गंगा के किनारे रहता है, वह जल का संग्रह नहीं करता। हमारे समाज का ढांचा ऐसा होना चाहिए कि संग्रह करने की आवश्यकता ही न रह जाए और किसी को अपने भविष्य के लिए खतरा न हो। वस्तुओं पर, जिनमें भूमि भी शामिल हो, सभी का समान अधिकार हो, हर कोई अपनी शक्ति के मुताबिक काम करे और उसे अपनी जरूरतों के अनुसार हिस्सा मिले।

व्यक्तिगत मिल्कीयत की कोई सुरक्षा नहीं है। इसलिए हर व्यक्ति को अपना परिष्कृत स्वार्थ समाज के हित में सन्निहित कर देना चाहिए और समाज ही को उसके विकास की ओर ध्यान देना चाहिए। यही सर्वोदय का मार्ग है।

सच्चा भूदान

हम भूदान का प्रचार करते हैं तो हमारा लक्ष्य केवल भूमि-वितरण ही नहीं है। यह तो साध्य की प्राप्ति के लिए एक साधन मात्र है जैसे कि गांधी जी ने समुद्र के जल से नमक बनाने का कार्यक्रम शुरू किया था। यह बात तयशुदा है कि जब तक जनता इस नए व क्रांतिकारी विचार को स्वीकार नहीं करती, तब तक ग्रामीण विकास कार्यक्रम आगे नहीं बढ़ सकते। भारत में जब भूमि की बेहद कमी है और प्रति व्यक्ति के पीछे सिर्फ 0.71 एकड़ जमीन उपलब्ध है, तब भूस्वामियों को अपनी मिल्कीयत छोड़ना और भूमि देना बिलकुल लाजिमी है।

हमारे देश में कुछ ऐसे भी लोग हैं, जो विदेश में शिक्षा प्राप्त कर लौटने के बाद किसान को खेती-बाड़ी में यंत्रों का उपयोग करने की सलाह देते हैं। यह बिलकुल मूर्खतापूर्ण बात है। यंत्रीकरण से मानवीय समस्याएं नहीं सुलझ सकतीं। सब बेकार लोगों को बड़े कारखानों में काम नहीं दिया जा सकता। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस बात को स्वीकार भी किया गया है। तब फिर कृषकों को बेकार समय का सदुपयोग करने का और कौन-सा उपाय हो सकता है? इसके लिए ग्रामवासियों को निश्चय करना चाहिए कि वे अपने ही गांव में बनी हुई वस्तुओं का इस्तेमाल करेंगे। गांव में बनी हुई वस्तुओं को शहरों में बेचने से समस्या हल नहीं होती। मौजूदा सरकार ग्रामीण वस्तुओं की बिक्री पर छूट (रिबेट) देती है। अगर कोई और सरकार शासन की बागडोर संभाले तो शायद वह छूट न दे। इसलिए सही तरीका यह है कि हम स्वावलंबन को अपनाएं। ग्राम-संकल्प हर गांव के लिए बड़े महत्व की बात है। ❑

धूम्रपान का अर्थशास्त्र : एक विश्लेषण

मो. तारिक*

धूम्रपान का अर्थ जलती हुई तंबाकू, जो कि सिगरेट, सिगार और हुक्कों के रूप में प्रयोग की जाती है, का धुंआ अंदर लेकर बाहर निकालना होता है। शायद धूम्रपान का प्रयोग सबसे पहले वेस्ट इंडीज के लोगों द्वारा किया गया था। पहले-पहल धूम्रपान का प्रयोग धार्मिक कार्यों तथा कुछ अवसरों पर दवाइयों के रूप में किया गया। तंबाकू के बारे में जानकारी नई दुनिया की खोज करने वाले यूरोप के लोगों ने 16वीं शताब्दी में दी लेकिन बहुत-से शासकों के समय धूम्रपान वर्जित था और इसके न मानने वालों को बड़ा दंड दिया जाता था। विभिन्न धार्मिक संगठनों के द्वारा भी इसके कुप्रभावों के कारण उस पर प्रतिबंध लगाया गया, लेकिन इसके बावजूद तंबाकू का प्रयोग प्रतिदिन बढ़ता ही रहा है। अब स्थिति यह है कि भारत जैसे विकासशील देश में 90 प्रतिशत वयस्क पुरुष किसी न किसी प्रकार से तंबाकू का प्रयोग करते हैं।

जीवन काल कम होना

धूम्रपान स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है क्योंकि इसमें निकोटिन नामक जहरीला पदार्थ पाया जाता है और इसके अतिरिक्त दूसरे हानिकारक पदार्थ जैसे कार्बन मोनोआक्साइड, अमोनिया एसिड और कई तरह के एलडीहाइड इत्यादि भी पाए जाते हैं। सांख्यिकीय सर्वेक्षणों की रिपोर्टों के अनुसार धूम्रपान से बहुत अधिक मौतें फेफड़े के कैंसर और दूसरी बीमारियों से होती है और दिन-प्रतिदिन इनका प्रतिशत बढ़ता जा रहा है। केवल अमरीका में धूम्रपान से होने वाली बीमारियों से पिछले वर्ष लगभग 4,50,000 व्यक्ति मौत का शिकार हुए हैं।

*अंशकालिक प्रवक्ता, अर्थशास्त्र, जी.एफ. (पी.जी.) कालेज, शाहजहांपुर (उ.प्र.)

धूम्रपान के फलस्वरूप मनुष्य के जीवनकाल में कमी आती है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि मनुष्य के एक सिगरेट पीने से उसकी जिंदगी 11 मिनट कम हो जाती है, इसलिए एक औसत दर्जे का धूम्रपान करने वाला मनुष्य उस आदमी से 11 वर्ष कम जीता है, जो धूम्रपान नहीं करता है।

आर्थिक पहलू

अब हम धूम्रपान के आर्थिक पहलू का अध्ययन करने के लिए एक ऐसे व्यक्ति का उदाहरण लेते हैं जो 10 रुपये प्रतिदिन धूम्रपान पर खर्च करता है, इस तरह एक महीने में उसका खर्च 300 रुपये होगा। माना कि उसका अनुमानित जीवन काल 60 वर्ष का है और उसने किशोरावस्था (Teen Age) के समय धूम्रपान नहीं किया, लेकिन उसने अपने 20वें वर्ष के पहले दिन से धूम्रपान प्रारंभ किया। अत: वह अपने 41 वर्ष के जीवनकाल में 1,47,600 रुपये खर्च करेगा और इन सबके अतिरिक्त उसे इन वर्षों में फेफड़े के कैंसर या उससे संबंधित बीमारियां हो सकती हैं और उनके इलाज पर भी खर्च करना पड़ सकता है।

एक विवेकशील व्यक्ति होने के नाते अगर आप बचत में विश्वास करते हैं ताकि आप असमय आने वाली परिस्थितियों (बेरोजगारी, दुर्घटना, बीमारी और जीवन के दूसरे खतरे) तथा भविष्य में आने वाली जिम्मेदारियों (बच्चों की शिक्षा, लड़कियों का विवाह इत्यादि)से निपट सकें तो आप 300 रुपये प्रतिमाह बचत करते हैं और इसे किसी भी राष्ट्रीय बचत योजना, नियत जमा (Fixed Deposit), जीवन बीमा निगम में जमा करते हैं। इससे आप या आपके आश्रित 41 वर्ष बाद जो धन पाएंगे, हम अगर आपको अचानक बताएं तो आप इस पर विश्वास नहीं करेंगे, फिर भी आपको विश्वास दिलाने के लिए एक उदाहरण देते हैं।

आप 300 रुपये प्रतिमाह एक वर्ष के लिए आवर्ती जमा में 12 महीने तक जमा करें, 12 महीने के अंत में आपको 3,759 रुपये मिलेंगे। यह रकम आप नियत जमा में रखें, 10 वर्ष के बाद वर्तमान में 12 प्रतिशत ब्याज के हिसाब से 12,261 रुपये हो जाएंगे। इसी धन को दोबारा फिर 10 वर्ष के लिए नियत जमा में जमा करें, 20 वर्ष बाद यह 39,977 रुपये हो जाएंगे, इसको तीसरी बार जमा कीजिए 30 वर्ष बाद आपको 1,30,472 रुपये मिलेंगे, चौथी बार इसको इसी प्रकार जमा करने पर 40 वर्ष बाद आप 4,25,604 रुपये पाएंगे।

अगर एक औसत अनुमान पूरे निवेश के समय के लिए 300 रुपये प्रतिमाह के हिसाब से आवृत्ति जमा योजना (आर.डी.) में एक वर्ष तक रखा जाए और इसके पश्चात प्रत्येक वर्ष की बचत को 10 वर्ष की एफ.डी. में रखा जाए, तब 41 वर्ष बाद कोई भी व्यक्ति 50 लाख रुपये के लगभग प्राप्त कर सकता है। उतनी ही रकम जीवन बीमा निगम में निवेश करने से भी प्राप्त होगी।

इस तरह धूम्रपान छोड़ देने से व्यक्ति न केवल अपने स्वास्थ्य को होने वाले नुकसान से बच सकता है, बल्कि लाखों रुपये की बचत भी कर सकता है। ❑

झींगा मत्स्य उद्योग

डा. सीताराम सिंह पंकज *

आर्थिक महत्व के जलीय जीवों में मछलियों के अतिरिक्त कुछ जलीय क्रस्टेशियन भी शामिल किए गए हैं। सच पूछिए तो भारत में सबसे महत्वपूर्ण क्रस्टेशियन मत्स्य उद्योग झींगा पालन (Prawn Fishery) है। इसमें कोई दो मत नहीं कि झींगा मनुष्य के लिए अति महत्वपूर्ण पोषक आहार है। इतना ही नहीं, भारत का झींगा मत्स्य उद्योग अमरीका के पश्चात दूसरे नम्बर पर आता है। कुछ भागों में विशेषतया पश्चिमी समुद्र तट पर पकड़े गए झींगों की संख्या किसी भी अकेले समूह की पकड़ी गई मछली से अधिक होती है। केवल केरल राज्य तथा मुंबई के समुद्र तटों पर पकड़े गए कुल झींगे भारत में पकड़े जाने वाले झींगों का 92.4 प्रतिशत होते हैं।

झींगा मत्स्य पालन के प्रकार

पानी की प्रकृति, विशेषता तथा उस स्थान की भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार झींगा मत्स्य पालन का अध्ययन चार समूहों में किया जाता है—

छिछले जल का झींगा मत्स्य पालन : पश्चिमी समुद्र तट पर फैले इस उद्योग में झींगे तट के किनारे छिछले जल में पकड़े जाते हैं तथा इस जल की गहराई शायद ही कभी 18 मीटर से अधिक होती है। जून से अगस्त माह यानी मानसून काल में इनके झुंड मालाबार तट पर आते हैं और मछुआरे क्षिप्त जाल (Caste nets) की सहायता से झींगों को पकड़ लेते हैं।

ज्वारनदमुख तथा खारी झीलों का झींगा मत्स्य पालन : उत्पादन के मुख्य क्षेत्र खारी झीलें (Back Water) हैं जो अर्द्ध-दक्षिणी केरल तट से लेकर मालाबार तट के अनेक पहाड़ी नदियों के मुहानों तक फैली हैं। एनूर, पुलीकट तथा चिल्का झील और पूर्वी तट पर गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों के ज्वारनदमुख (Estuaries) झींगा पकड़ने के प्रमुख क्षेत्र हैं। जाहिर है चिल्का झील में झींगा उत्पादन काफी अधिक है।

अलवणजलीय झींगा मत्स्य पालन : पूरे देश में ही नदियों, झीलों तथा दूसरे अलवणीय स्रोतों से झींगा पकड़े जाते हैं। झींगों की कुछ जातियां खारे जल की झीलों से कुछ विशेष महीनों में पकड़ी जाती हैं, जब जल की लवणता कम होती है तथा झींगे प्रजनन के लिए यहां आते हैं।

समुद्री झींगा मत्स्य पालन : भारतीय समुद्र तट पर पकड़े जाने वाले अधिकांश झींगे पीनीडी कुल (Family Penaeidae) के होते हैं। मुख्यत: तीन वंश पीनस फेबर, मेटा पीनस वुड मेसन तथा पैरापीनीआप्सिस वुड मेसन पाए जाते हैं। समुद्री झींगे गर्म छिछले समुद्रों को पसंद करते हैं तथा अपने डिम्भक तथा वयस्क अवस्थाओं में कीचड़ वाले जल में, जो डेल्टा वाले भागों में पाया जाता है, वृन्दन करते हैं।

झींगा की जातियां

विभिन्न प्रकार के जलों में झींगा की अनेक जातियां पाई जाती हैं, जिनके आकार भी भिन्न-भिन्न होते हैं। व्यापारिक स्तर पर झींगा पालन के लिए वे जातियां प्रयोग में लाई जाती हैं जो बड़े आकार तथा अधिक भार की, बहुतायत में मिलने वाली और आसानी से पालने के योग्य हों। इस दृष्टि से पीनीडी, पेंडालीडी, सरगेस्टीडी तथा पेलीमोनीडी जातियों के झींगे अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। कुछ जातियां पालने के लिए अच्छी होती हैं तथा कुछ बहुत कम मात्रा में पकड़ी जाती हैं। संवर्धन के विचार से झींगों की निम्नलिखित प्रजातियां महत्वपूर्ण हैं :

i) **पीनस इंडिकस :** यह समुद्र तट, ज्वारनदमुख से तटीय झीलों तक तथा पश्च जल में पाई जाने वाली सामान्य व्यापारिक जाति है। इसकी अधिकतम लंबाई 20 से.मी. होती है।

ii) **पीनस मोनोडोन फेबर :** यह भारत के पश्चिमी और पूर्वी समुद्री तटों पर पाई जाने वाली सबसे बड़ी जाति है। इसकी अधिकतम लंबाई 30 से.मी. होती है।

iii) **मेटापीनस एफिनिस मिलने एडवर्ड्स :** झींगे की यह जाति सामान्यत: पश्चिमी बंगाल के निचले भागों वाले धान के खेतों में पाई जाती है। कभी-कभी यह मुम्बई के समुद्री तट पर भी पाई जाती है। पूर्ण विकसित झींगे की लंबाई 13 से.मी. होती है।

iv) **पैलीमोन फ्लूमिनीकोला केम्प :** इस जाति के झींगे अलवण जल या खारे जल में रहना अधिक पसंद करते हैं तथा गंगा नदी में 1,127 कि.मी. की दूरी तक पहुंच जाते हैं।

झींगा का खाद्य

झींगे जीवित प्राणियों, वनस्पति पदार्थों तथा मृत जैविक पदार्थों—सभी को खाते हैं। झींगे अपने वक्षीय टांगों में पाई जाने वाली चिमटे जैसी रचना—चीली द्वारा भोजन को पकड़ कर मुख तक ले जाते हैं, मैक्सिलीपीड भोजन को काट कर मुख के अंदर पहुंचा देते हैं। वहां जबड़ों की सहायता से इसे चबाकर निगल लिया जाता है। झींगे का भोजन कीट, समुद्री घासें, कवक तथा मांस होते हैं। एक रोचक तथ्य यह है कि सामान्य परिस्थिति में बड़े झींगे कभी भी स्वस्थ छोटे झींगे को नहीं खाते, किंतु यदि छोटे झींगे बीमार हो जाएं या मर जाएं, तब बड़े झींगे उसे खा लेते हैं। जाहिर है विभिन्न जल स्रोतों में अनेक प्रकार के झींगे का वितरण इनके भोजन के

* अध्यक्ष, प्राणी विज्ञान विभाग, के.एस.आर. कालेज, सराय रंजन, समस्तीपुर

वितरण पर भी निर्भर करता है। इसके अतिरिक्त झींगे के भोजन तथा भोजन की आदतें परिस्थितिजन्य कारकों तथा एक भोजन विशेष की उपलब्धता पर भी आधारित होती हैं।

अलवणजलीय झींगे का पालन

मैक्रोब्रेकियम रोजेनबर्गी एक बड़े आकार का भोजन योग्य झींगा है जो नदियों, खेतों तथा कम लवण वाले नदी के मुहानों में बहुतायत से पाया जाता है। जब से झींगे का व्यापारिक स्तर पर निर्यात आरंभ हुआ है, इसकी संख्या में लगातार कमी आ रही है। झींगा पालन के लिए तालाबों, नदियों या खेतों से एकत्र झींगों को टैंकों में स्थानान्तरित कर दिया जाता है जिनमें वायु संचरण का अच्छा प्रबंध रहता है। इन एकत्र किए गए झींगों को आक्सीजन वाले प्लास्टिक के थैलों या जलीय पौधों सहित बांस की टोकरियों में ही कहीं अन्यत्र ले जाना चाहिए।

निषेचन (Fertilization) के लिए 60 लीटर क्षमता वाले एक्वेरियम में एक जोड़ा नर तथा मादा झींगा रखना चाहिए। कुछ समय बाद ये मैथुन करते हैं जिसके पश्चात मादा अंडे देना आरंभ कर देती है जो लगभग 24 घंटे तक अंडे देती है। व्यापारिक लाभ के लिए अंडे देने की क्रिया नियोजित की जाती है। विभिन्न आकार के अंडजनन (Spawning) टैंक तैयार किए जाते हैं, मसलन 200×100×40 से.मी. का टैंक दस जोड़ों के लिए उचित रहता है। बहरहाल अंडजनन टैंक में वायु संचरण का उचित प्रबंध रहना चाहिए। इसके साथ ही टैंकों की सफाई का भी समुचित प्रबंध होना आवश्यक है।

उचित परिस्थितियों में अंडों के समुचित विकास के लिए अलवण जल में समुद्री जल का मिलना लाभकारी रहता है। अंडों से लार्वा निकलते ही इन्हें सीमेंट के बने टैंक में स्थानांतरित कर देना चाहिए। टैंक का तापमान 24 डिग्री सेल्सियस से 30 डिग्री सेल्सियस के बीच रखना अच्छा रहता है। इसी प्रकार छायादार स्थानों में रखे टैंक विकास के लिए उचित रहते हैं। तरुण लार्वा को तैयार भोजन—भाप में पकाया अंडों का कस्टर्ड, फिश बाल तथा मछली के अंडे देने चाहिए। लार्वा जब 2 या 3 दिन का हो जाए तो उसे दिन में 4-5 बार कृत्रिम आहार देना चाहिए। लगभग 5 से.मी. लंबे (60 दिन आयु वाले) तरुण झींगे अलवण जल या हल्के से खारे जल में 22 डिग्री से 32 डिग्री सेल्सियस, अच्छी आक्सीजन वाले तालाबों, नहरों या धान के खेतों में आसानी से पाले जा सकते हैं। एक 50×20×1.5 मीटर वाला कृत्रिम तालाब कार्य की दृष्टि से तथा आर्थिक रूप से उचित रहता है। बहरहाल तालाब से परभक्षी जंतुओं (Predators) और बहुत अधिक पाए जाने वाले जलीय पौधों को निकाल देना चाहिए।

झींगों की उचित वृद्धि के लिए इनके प्राकृतिक परिवेश में प्राकृतिक भोजन के लिए प्रति हेक्टेयर में 200 कि.ग्रा. गाय का गोबर, 10 कि.ग्रा. चूने में मिलाकर डालना चाहिए। झींगों की उचित वृद्धि के लिए पानी की धारा का धीमा प्रवाह होते रहना भी एक अच्छा उद्दीपन (Stimulant) है। समुचित पोषण और प्राकृतिक अवस्थाओं में 6 माह के भीतर झींगे की लंबाई 20 से.मी. तथा वजन 100 ग्राम तक बढ़ सकता है। प्रतिवर्ष झींगे की दो फसलें प्राप्त की जा सकती हैं। इस प्रकार ऐसे धान के खेत जिनमें 12 से.मी. पानी हो, तीन माह आयु-समूह के झींगे डाले जा सकते हैं जो धान की फसल पकने के साथ बड़े हो जाते हैं। किंतु कीटनाशक दवाओं का प्रयोग ऐसे खेतों में नहीं करना चाहिए क्योंकि झींगे कीटनाशकों के प्रति अति संवेदनशील होते हैं। अत: ऐसे खेतों में जहां कीटनाशक प्रयोग किए गए हैं, झींगा मछली की जनसंख्या को भारी क्षति पहुंच सकती है।

समुद्री झींगे का पालन

समुद्री झींगे का पालन एक सुंदर व्यवसाय है। बहरहाल समुद्री झींगा के पालन की सफलता में अनेक कारक मसलन—स्थान का चुनाव, पानी तथा भूमि का प्रकार, बीज की उपलब्धता तथा फार्म की तैयारी आदि महत्वपूर्ण हैं।

स्थान का चुनाव : इसके लिए सबसे उपयुक्त स्थान खारे पानी वाले नदियों के मुहाने के पास की दलदली भूमि या किनारे के ज्वारीय सपाट (Tidal flate) होते हैं क्योंकि समुद्र तल के बहुत पास वाले स्थानों पर अपरदन का खतरा बना रहता है।

जल की विशेषता : वाष्पीकरण, निस्पंद (Seepage) या बाहर निकल गए जल की पूर्ति के लिए उचित प्रकार के स्वच्छ जल की नियमित आपूर्ति सुनिश्चित होनी चाहिए। जल में हाइड्रोजन सल्फाइड या दूसरी अशुद्धियां नहीं होनी चाहिए। जल में पोषक पदार्थों और आक्सीजन की प्रचुरता होनी चाहिए। इसके साथ ही जल का तापमान और लवणता (Salinity) भी झींगे की विशिष्ट प्रजाति के अनुकूल होनी चाहिए।

बीज की उपलब्धता : किसी क्षेत्र-विशेष में पाई जाने वाली झींगे की जातियों से ही यह निश्चित हो पाता है कि उस भाग के लिए उचित जाति कौन सी है। झींगा पालन के लिए झींगा की वही जाति उपयुक्त रहती है जो अंडों से लेकर वयस्क अवस्था तक पाली जा सके तथा जिसके तरुण आसानी से प्राकृतिक वातावरण में पल-बढ़ सकें।

भूमि की विशेषता : भूमि जिसका पी.एच. मान 6.5 से 7.5 तक हो, उचित होती है क्योंकि यह देर तक पानी रोक सकती है। तली में 50 से.मी. से अधिक तलछट नहीं होनी चाहिए क्योंकि तलछट यदि अधिक हो जाए तो झींगा का उत्पादन कम हो जाता है।

अन्य कारक : व्यापारिक तथा आर्थिक झींगा उत्पादन के लिए इसका क्षेत्र पांच हेक्टेयर से कम नहीं होना चाहिए। यह स्थान आसानी से पहुंचने योग्य होना चाहिए, जिससे झींगा पालने वाला व्यक्ति वहां पहुंच कर पकड़े गए झींगों को आसानी से विपणन के लिए भेज सके।

फार्म की तैयारी

झींगा पालन के लिए फार्म की तैयारी आवश्यक है। इसके लिए सर्वप्रथम तालाब का सारा पानी निकाल देना चाहिए और तली को सुखा देना चाहिए। इसके पश्चात भली-भांति जुताई करके 400 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर के अनुसार चूने का प्रयोग करना चाहिए। इसके साथ ही झींगा के निर्मोचन (Moulting) के लिए आवश्यक कैल्शियम मिला देना चाहिए। भूमि की उर्वरा शक्ति भी जैविक खादों के प्रयोग से बढ़ा देनी चाहिए।

झींगा मत्स्ययन की विधियां

भारतीय समुद्र तट की लंबाई लगभग 4,500 कि.मी. है। इसका अधिकांश भाग महाद्वीपीय शेल्फ का है जिसमें पूरे वर्ष मछली या झींगा पकड़ने की अनेक संभावनाएं हैं। छिछले पानी वाले भागों में मत्स्ययन (Fishing) केवल गिअर (Gears) की सहायता से होता है जबकि गहरे जल मसलन नदियों, झीलों, समुद्र आदि में मत्स्ययन के लिए नाव तथा गिअर की आवश्यकता होती है। भारत में मत्स्ययन के लिए अब यंत्र-चालित नावों तथा गिअर का प्रयोग होने लगा है। नाव का प्रयोग पानी की सतह पर झींगा मछली पकड़ने के लिए किया जाता है। झींगा पकड़ने में जाल, फंदे तथा हुक का भी प्रयोग होता है।

झींगे का सड़ना

यदि पकड़ने के पश्चात उचित उपायों का प्रयोग न किया जाए तो झींगा सड़ने लगता है। झींगे में खराबी मुख्यत: दो प्रकार की होती है। एक रासायनिक प्रकार की खराबी होती है जिसमें शरीर के ऊतकों से स्वतंत्र एमीनो अम्ल आदि बाहर निकल जाते हैं जिससे भार, पोषक तत्वों तथा स्वाद में अंतर आ जाता है। दूसरे प्रकार की खराबी है, जीवाणुओं द्वारा संदूषण (Contamination) जिसमें जल-अपघटन (Hydrolysis) द्वारा पेशियों से वसाओं के अनिवार्य तत्व, स्वतंत्र वसा-अम्ल आदि निकल आते हैं।

जाहिर है यदि नावों में झींगे 6 घंटे तक बिना बर्फ के रखे रह जाएं तो यह खराब होना शुरू हो जाते हैं क्योंकि झींगा मछली की अपेक्षा शीघ्र खराब होता है। 28 डिग्री सेल्सियस पर 4 घंटे तक झींगा की मौलिक गुणवत्ता बनी रहती है। किंतु इसके बाद तेजी से अपघटन प्रारंभ हो जाता है और 8 घंटे बाद यह खाने योग्य नहीं रहता। अत: पकड़ने के पश्चात तुरंत ही झींगे को सुरक्षित रखने की प्रक्रिया आरंभ कर देनी चाहिए। गरज यह कि पकड़ने के पश्चात झींगा को शीघ्रातिशीघ्र बर्फ की परतों में रखकर स्थानीय बाजार में बेचने के लिए भेज देना चाहिए। आपूर्ति तथा निर्यात के लिए झींगे को विभिन्न विधियों द्वारा हिमीकृत (Frozen) किया जाता है। प्रशीतन के लिए केवल ताजे झींगों का प्रयोग करना चाहिए। इसके साथ ही स्वास्थ्य संबंधी नियमों का पालन करते हुए प्रचुर मात्रा में बर्फ का प्रयोग करना चाहिए।

झींगे का निर्यात

सच पूछिए तो झींगा निर्यात, विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। झींगा प्रशीतित रूप में, डिब्बा बंद रूप में, सूखे, आचार, झींगा चूर्ण, टुकड़े, झींगा करी तथा झींगा के खाद्य पदार्थ के रूप में निर्यात किया जाता है। प्रशीतित झींगा आस्ट्रेलिया, बेल्जियम, कनाडा, डेनमार्क, फ्रांस, जापान, कुवैत, नीदरलैंड, दक्षिण अरब, अमरीका, स्वीडन तथा अन्य देशों में भेजा जाता है। सूखा झींगा मुख्यत: आस्ट्रेलिया, कनाडा, फ्रांस, जापान, नीदरलैंड, ग्रेट ब्रिटेन, अमरीका आदि देशों में निर्यात किया जाता है। 'झींगा आचार' कनाडा, दुबई, ग्रेट ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया आदि देशों में भेजा जाता है। झींगा पाउडर आस्ट्रेलिया, नीदरलैंड, इंग्लैंड, जर्मनी आदि देशों में भेजा जाता है।

जाहिर है यदि भारत अच्छी गुणवत्ता वाले तथा अधिकाधिक झींगों का उत्पादन कर सके तो यह विदेशी मुद्रा अर्जन का एक अच्छा स्रोत बन सकता है। इस प्रकार झींगा मत्स्य उद्योग देश की अर्थ-व्यवस्था को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

झींगा मत्स्य उद्योग पर प्रदूषण का प्रभाव

इसमें कोई दो मत नहीं कि झींगा पालन एक लाभदायक और रोजगारोन्मुखी व्यवसाय है। किंतु वर्तमान जल प्रदूषण की समस्या ने इसे बुरी तरह प्रभावित किया है। इसके कारण अलवणजलीय और लवणजलीय स्रोतों में निरंतर कमी आ रही है। कल-कारखानों के औद्योगिक कचरे, खाद, कीटनाशक दवाएं, डिटर्जेन्ट, रेडियोधर्मी पदार्थ तथा तेल आदि का जल स्रोतों में छोड़ा जाना जल प्रदूषण का प्रमुख कारण है।

झींगा मत्स्य उद्योग की सफलता के लिए यह जरूरी है कि जल प्रदूषण को हर संभव उपाय से रोका जाए। ताजा शोध अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि गोरखपुर, उत्तर प्रदेश की रामगढ़ झील में विभिन्न प्रकार के अपशिष्ट पदार्थों के डालने के कारण झींगा मछली लगातार कम होती चली जा रही है। तेल प्रदूषण का असर तो दस वर्षों तक जल स्रोतों में मौजूद रहता है। बहरहाल झींगा मत्स्य उद्योग से हजारों बेरोजगारों को रोजगार मिल सकता है। देश के अनेक स्थानों में इसके लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई है। वस्तुत: वर्तमान संदर्भ में प्रदूषण-मुक्त वातावरण में झींगा मत्स्य उद्योग को बढ़ावा देकर आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। ❑

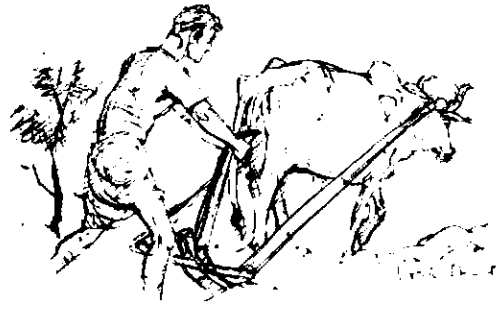

उत्तरकाशी से यमुनोत्री तक

बजरंग बिहारी तिवारी*

दो बातें बरबस याद आ रही हैं।

पाठ्य-पुस्तकों ने बचपन में जानकारी दी थी कि हिमालय बड़ा उपयोगी है। उसमें जंगल हैं जिससे इमारती लकड़ी प्राप्त होती है, जलाने के लिए ईंधन मिलता है, जड़ी-बूटियां मिलती हैं, नदियां निकलती हैं, जानवर हैं, फूल हैं, ये लाभ हैं, वो लाभ हैं। लगता था हिमालय एक ऐसी वस्तु है जिसका 'मल्टी परपज़' उपयोग किया जा सकता है।

उस समय पहाड़ के निवासियों की जो तसवीर प्रस्तुत की गई, उसमें उनका जीवन नितांत सुखमय था। वे अपने में संतुष्ट और मस्त थे। अभाव का नामोनिशान नहीं। लड़कियां बेहद खूबसूरत, नाजुक, भोली-भाली, संकोची और अतिथि-प्रेमी। बड़े रोमांटिक भाव उभरते थे, यह सब पढ़कर।

राहुल सांस्कृत्यायन की पुस्तकों से बहुत बाद में परिचय हुआ। थोड़ा बड़ा हुआ तो हिमालय के बारे में जानकारी को विस्तार मिला। उन्हीं दिनों एक श्लोक पढ़ा था :

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः
पूर्वापरौ तोयनिधीवगाह्य स्थितः पृथिव्या इब मानदण्डः।

अर्थात इस (भारत) के उत्तर में देवता के समान पूजनीय हिमालय नाम का बड़ा भारी पहाड़ है। यह पूर्व और पश्चिम के समुद्रों तक फैला हुआ ऐसा लगता है, मानो वह पृथ्वी को नापने-तौलने का मापदण्ड हो।

'कुमार संभव' के इस प्रथम श्लोक ने पहली बार मन में हिमालय के प्रति श्रद्धामय जिज्ञासा का भाव पैदा किया। बाद के दिनों में कालिदास की कृतियों से जैसे-जैसे जुड़ता गया, हिमालय के बहुत-से रमणीय शब्दचित्र स्मृति पटल पर बनते गए। इसके प्रत्यक्ष दर्शन की इच्छा प्रबल हो गई।

आखिरकार इस इच्छा की पूर्ति का अवसर मिला। जे.एन.यू. माउंटेनरिंग क्लब ने दस दिवसीय ट्रैकिंग की योजना बनाई। 16 से 26 मई के सारे कार्यक्रम स्थगित करके उसमें शामिल होना मेरी पहली प्राथमिकता बनी। ट्रैकिंग के मद्देनजर अपेक्षित तैयारी शुरू हुई—नियमित दौड़ और शारीरिक व्यायाम। सोलह मई की शाम को पूरी टीम इकट्ठी हुई। क्लब के अनुभवी सदस्यों ने जरूरी निर्देश देकर हमें विदा किया। दिल्ली से चलकर अगली सुबह हम हरद्वार पहुंचे और वहां से उत्तरकाशी। जीप द्वारा शहर पार करके हम उस जगह पहुंचे, जहां से अभियान शुरू होना था।

*जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में शोध छात्र

कल्याणी में जहां हमने तम्बू लगाया, वह स्थान नदी के बिल्कुल पास था। चारों तरफ ऊंचे-ऊंचे पहाड़, वृक्षों की हरियाली, अपराजेय किस्म की घास और इन सबके बीच पानी की कल-कल ध्वनि। ध्वनि नहीं, संगीत। लयबद्ध, सधा हुआ, आबाधित और नियमित। न जाने कब से यह संगीत मुखरित है, कब तक रहेगा। रोमांच हो आया। एकाएक मैं पीड़ा से उछल पड़ा। शायद बिच्छू ने डंक मार दिया था। जंगली बिच्छू के नाम से दहशत होती थी। लेकिन नहीं। यह बिच्छू नहीं, बिच्छू पौधा था जिसके छोटे-छोटे कांटे थोड़ी देर के लिए बिच्छू काटने जैसा दर्द देते हैं। बाद में मुझे मालूम चला कि इस पौधे के बगल में ही एक नन्हा-सा पौधा होता है जिसकी पत्तियों का रस, वेदना का तुरंत उपचार करता है। प्रकृति का संतुलन कितना अनुपम है। दर्द थोड़ी देर में गायब हो गया। बस की लंबी यात्रा ने शरीर को थका दिया था। भोजन के बाद नींद का तुरंत आगमन हुआ। वातावरण का सम्मिलित स्वर धीमा हो गया था।

सुबह सोकर उठे तो सब कुछ नया अनुभव हो रहा था। ताजगी-भरा, स्फूर्तिमय शरीर आस-पास के दृश्यों को नए सिरे से देख रहा था, अलग तरह से पर्यवेक्षण कर रहा था। दिल्ली की सल्फर-डाय-आक्साइड, नाइट्रोजन और कार्बन-मोनो-आक्साइड से भरी हवा न मिलने के बावजूद संतुलन नहीं बिगड़ा था। दिल्ली के बारे में मुझे लगता है कि अगर यहां की हवा एकाएक प्रदूषणमुक्त हो जाए और पानी बैक्टीरिया-रहित, तो राजधानी के बाशिन्दे इसे झेल नहीं सकेंगे। बीमार पड़ जाएंगे।

हमने अपना नाश्ता तैयार किया, टेंट बांधा और रैक-सैक को पीठ पर लादकर तैयार हो गए। यात्रा की यह शुरुआत थी। उत्साह के अतिरेक में हम बढ़ते गए।

कुछ किलोमीटर के बाद जहां से सीधी चढ़ाई शुरू हुई, कई लोगों के रोमांटिक भावों का 'एंटी क्लाइमेक्स' प्रारंभ हो गया था। इन लोगों में मैं भी एक था। पीठ पर लदा बोझ और पहाड़ पर चढ़ने का पहला अनुभव उत्साह के दुर्ग में सेंध लगा रहे थे। हम बीच में कुछ पलों के लिए रुकते थे, फिर चलना जारी करते। कारवां चलता ही रहा। सीधी चढ़ाई के बावजूद 15 किलोमीटर से अधिक की यात्रा हमने की। एक नदी के किनारे टेंट लगाया और भोजन की तैयारी में जुट गए। परिश्रम ने भोजन का स्वाद ही बदल दिया था। पूरी यात्रा के दौरान अपने हाथ से पकाया भोजन अपने स्वाद, जरूरत और बनावट के कारण यादगार रहेगा। ग्लूकोज़ और बोर्नविटा हमें लगातार ऊर्जा प्रदान करते रहे। चाय मैं नहीं पीता लेकिन यहां आकर इसकी चुस्कियां सर्द हवाओं के बीच आनन्द का स्रोत

बनीं। यशपाल की एक कहानी याद आई। चारों तरफ बर्फ ही बर्फ। बीच में युवकों का एक समूह फंसा हुआ है। मांसाहार के बाद सबको ब्रांडी लेनी है और गीले कपड़े उतार कर नंगे ही 'स्लीपिंग बैग' में घुसना है। उत्तर भारत के एक पारंपरिक ब्राह्मण युवक को अपनी पवित्रता कायम रखनी है। वह यह सब नहीं करता। 'पवित्रता' की रक्षा तो हो गई लेकिन सुबह तक ब्राह्मण देवता....।

कल की यात्रा ने बहुत कुछ सिखाया था। उसका लाभ मिला। चलते हुए बीच में अगर कहीं रुकना हो तो तुरंत बैठने से बचना चाहिए और पीठ से सामान नहीं उतारना चाहिए। पानी थोड़ी-थोड़ी देर में पर कम मात्रा में लेना चाहिए। थकावट महसूस होने पर ग्लूकोज बेहतर है।

कठिन मोड़ और सीधी चढ़ाई के वक्त हममें से जो लोग आगे पहुंच जाएं, पीछे वालों से सहयोग करते थे। उत्साह बनाए रखने के लिए तालियां बजती थीं और प्रेरणादायक गीत गाए जाते थे।

थोड़ी-थोड़ी दूर पर हमें पानी के झरने मिलते थे। लगता, जैसे प्रकृति हमारे आगमन के स्वागत में औषधियुक्त पेय प्रस्तुत कर रही है। गहरे लाल रंग के फूल बड़े वृक्षों की छोटी डालियों से सीधे हृदय जगत में स्थान बना रहे थे। शीतल समीर अपने साथ कुछ आवाजें भी ला रहा था :

रम्यान्तरः कमलिनी हरितैः सरोभि-
श्छायाद्रुमैर्निसमितार्कमयूखतापः
भूयात्कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्या
शान्तानुकूलपवनश्चशिवश्च पंथाः

रास्ते में हल्की-हल्की बारिश शुरू हुई जो आज के गंतव्य डोडीताल तक चलती रही। डोडीताल का नजारा ही कुछ और था। आंखें स्वयंमेव विस्फारित हो गईं। कवि श्रीधर पाठक याद आए, "प्रकृति यहां एकांत बैठि निज रूप संवारति।" तीन तरफ हरे-भरे जंगल, पश्चिम में दूर तक फैली हिमाच्छादित पर्वत शृंखला। डूबते सूरज की रक्ताभ किरणें बर्फ पर पड़ रही थीं। बर्फ का वर्ण रूपहला से सुनहला और सूर्य रश्मिवत् होता जा रहा था। कई कोणों से कैमरे क्लिक कर उठे। एक-एक क्षण संजोने लायक। मन आह्लादित, शरीर पुलकित। सच्चे रोमांच का रहस्य अज्ञात न रहा। हम मूक से रह गए। बारिश पुनः शुरू होकर तेज हो चुकी थी।

डोडीताल के सौन्दर्य में हम बंध गए थे। इस तालाब का धार्मिक महत्व हमारे लिए ज्यादा महत्वपूर्ण न था लेकिन इसका नैसर्गिक मूल्य आंकने के लिए हमारे पास कोई 'पैरामीटर' नहीं था, न है। अंतरतम में इसकी छटा रच-बस गई। यहां हम दो रात रुके। इसके आगे से बर्फ शुरू होती है। 'स्नो ट्रैकिंग' के लिए हमें शारीरिक और मानसिक रूप से तैयार होना था।

डोडीताल से लेकर बर्फ तक की यात्रा बेहद कठिनाई भरी थी। हमारी आंखों पर धूप के चश्मे थे और चेहरे पर क्रीम की मोटी परत। पराबैंगनी किरणों से बचाव का यही तरीका था। बर्फ ने सारी थकान दूर कर दी। जिस लक्ष्य के लिए इतनी मुसीबत सही थी; लगा पा गए। धवलता से पूरा इलाका पटा पड़ा था। जहां तक देखो, बर्फ ही बर्फ। ऊंचे-ऊंचे गिरि शिखर हिमाच्छादित। छोटे-बड़े पेड़-पौधे इसी में सिमटे पड़े थे। उनकी पत्तियां ही बाहर झांक रही थीं। कठिन परिस्थितियों में भी जीवन की आशा नहीं छूटी। छोटी-मोटी चिड़ियां दिखीं और कांव-कांव करते सदाबहार कौवे। चिड़ियां अपनी-अपनी जगह पर फुदकती रहीं लेकिन कौवों को हमसे काम था। वे पास आए। उन्हें हलवा मिला और उबला हुआ नमकीन चना। लंच के लिए हमने यही तैयार किया था।

बर्फ में चलना शुरू किया तो मालूम हुआ कितना कठिन होता है ऐसे में अपने को साध पाना। शुरू में बड़ा डर लगा लेकिन बाद में 'स्लाइडिंग' में मजा आने लगा। दरबापास हमें पार करना था। इसकी ऊंचाई करीब 1,4000 फुट है। यहां से 'बंदर पूंछ' शिखर एकदम बगल में दिखता है। दोपहर तक हम कनेसर पहुंच गए थे। दोपहर बाद बर्फ पिघलनी शुरू होती है। कनेसर के चारों तरफ आक्षितिज हिमराशि बिखरी पड़ी थी। दो-तीन झोपड़ियां मात्र। रहने वाला फिलहाल कोई नहीं। निश्चय हुआ, रात यहीं गुजारी जाए। ठंड के मारे बुरा हाल था। पानी में हाथ लगते ही करंट दौड़ता था। उंगलियां बार-बार सुन्न होती थीं। एक बड़ी-सी झोपड़ी में हमने डेरा डाला और सूखी लकड़ियों का अलाव जला लिया। खाना डोडीताल की तरह चूल्हे पर ही बनाया गया। शाम को यहां बर्फ गिरनी शुरू हुई। डूबते सूरज का दृश्य अत्यंत मनोरम था।

कनेसर से हमने तड़के ही प्रस्थान कर दिया। बहुत मुश्किल भरा रास्ता था। जिंदगी और मौत के बीच का फासला कई जगहों पर बिल्कुल कम दिखाई पड़ रहा था। चलते-चलते दोपहर गुजर चुकी थी। बर्फ का पिघलना शुरू। कदम-कदम पर जोखिम। हमने इस पर भी विजय पाई।

मुश्किल का दूसरा दौर, कीचड़ भरी जंगल-झाड़ियों का था। सामान लेकर चलने में बेहद परेशानी। गति एकदम मंद हो गई। तेज चलना असंभव था। कुछ देर के लिए टीम का साथ छूटा तो बिछड़ने के भय से पसीने छूट गए। शाम होने के पहले हम बड़वाकुल पहुंच गए थे।

बड़वाकुल की रात चिरस्मरणीय रहेगी। खाना खा चुकने के बाद चांद निकला। आसमान उस वक्त तक असंख्य चमकीले तारों से भर चुका था। चांद तसव्वुर से भी खूबसूरत लगा। चकित कर देने की सीमा तक पूरा और साफ। पूरी घाटी दूधिया रंग में नहा उठी। तिथि के हिसाब से आज प्रतिपदा थी। दूर झरने से पानी गिरने की आवाज आ रही थी। भावनाएं उद्दीप्त हो उठीं, कल्पना को पंख लग गए। हम एक-एक पल संजोकर रख रहे थे।

अगला पड़ाव हनुमान चट्टी का था। अब तक हम अभ्यस्त हो चुके थे। पीठ का बोझ भी हल्का हो गया था। रास्ता आराम से कटा। मुझे एक बात खटकी। बहुत सारे पेड़ गिरे हुए मिले। ये अपने आप गिरे हुए थे। इन्हें काटा नहीं गया था। इसके अनुपात में नए पेड़ बहुत कम उग रहे थे। क्या मनुष्य के अत्याचार से तंग आकर प्रकृति खुद ही विवस्त्र होना चाहती है? यहां के जंगल में हिंस्र पशु बिल्कुल नहीं हैं। हम इस तरफ निश्चिंत रहे।

हनुमान चट्टी के आस-पास कई चट्टियां हैं। हनुमान चट्टी पहुंचते-पहुंचते मूसलाधार बारिश शुरू हो चुकी थी। किराए पर कमरा लिया गया। रात आराम से गुजरी। सुबह वहां से यमुनोत्री प्रस्थान किया। यमुनोत्री वहां से लगभग 15 कि.मी. है। कई किलोमीटर की बिल्कुल सीधी चढ़ाई। यमुनोत्री में गर्म पानी में स्नान करके हमने थकान उतारी। रुक-रुककर

बारिश जारी थी। वापस हनुमान चट्टी हम देर रात पहुंचे। ट्रैकिंग समाप्त हो चुकी थी। लगभग 100 किलोमीटर की पैदल यात्रा तय हुई। दिल्ली के सुविधापूर्ण जीवन के बीच समय निकालकर पल-पल जोखिम भरे, सहयोगपूर्ण, साहसिक जिंदगी के सार्थक दिन हमने इस बीच गुजारे थे। देश की आजादी की पचासवीं वर्षगांठ पर उसके एक भाग को करीब से जानने का मौका मिला था, ''जाने बिनु न होय परतीती। बिनु परतीति होय नहिं प्रीती।'' तमाम नैसर्गिक सौंदर्य के बीच हमने पहाड़ी किसानों की संघर्ष-कथा से तादात्म्य स्थापित किया था। जंगल से लकड़ियों का बोझ लाती, खेतों में हाड़-तोड़ मेहनत करती औरतों ने हमारे सामने अपनी पूर्वनिर्मित छवि को चकनाचूर कर दिया था। प्राथमिक शिक्षा से भी वंचित, अभावों में पलते बच्चे स्मृति में वेदना की एक लकीर खींच गए थे। पहाड़ की जिंदगी का यह सच पाठ्य-पुस्तकों में व्यक्त 'सच' से कितना भिन्न था। यह उस सच से भी अलग था जो दिल्ली में बैठे नामी-गिरामी पर्यावरणवादी और दूसरे लेखक अपने मोटे-मोटे ग्रंथों में लिखा करते हैं। सच के सीधे साक्षात्कार ने हमारे सोचने-समझने के ढंग को बहुत कुछ दुरुस्त किया है।

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः।

26 मई को हम दिल्ली पहुंच गए थे। ❑

(पृष्ठ 31 का शेष) **कृषि श्रमिकों की समस्याएं**

- कृषि श्रमिकों को रहने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में मकान उपलब्ध कराए जाने चाहिए।
- कृषि श्रमिकों की समस्याओं को हल करने में कृषि पर आश्रित उद्योगों का विकास किया जाए, साथ-साथ कुटीर तथा लघु उद्योगों तथा खादी ग्रामोद्योगों का भी विकास किया जाए जिससे कृषि श्रमिक खाली समय में इन उद्योगों में कार्य कर सकें और अपनी आय में वृद्धि कर जीवन-स्तर में सुधार कर सकें। इससे कृषि श्रमिकों की बेरोजगारी की समस्या पर भी काबू पाया जा सकेगा।
- भूमि व्यवस्था में सुधार कर अतिरिक्त भूमि को कृषि श्रमिकों को दिलाने का प्रयत्न किया जाए। साथ ही बंजर भूमि या खाली भूमि को भी उचित प्रकार से खेती योग्य बनाकर इन श्रमिकों में बांट दी जाए।
- ग्रामीण अंचलों में रोजगार केन्द्रों की स्थापना की जाए जिससे कृषि श्रमिकों को रोजगार संबंधी सूचनाएं मिल सकें और वे नगरीय क्षेत्रों में आकर रोजगार प्राप्त कर सकें।
- कृषि श्रमिकों के लिए एक संगठन की स्थापना की जाए जिससे उनका शोषण बंद हो सके, वे अपनी बात कह सकें तथा सरकार से अपने लिए कल्याणकारी योजनाएं लागू करा सकें।
- ऐसी सहकारी संस्थाओं की स्थापना की जाए तथा बैंकिंग सेवाएं उपलब्ध कराई जाएं जो कृषि श्रमिकों को ऋण सुविधाएं दें और ऋण की वापसी आसान किस्तों में लें और उनकी ब्याज दर भी कम हो।
- कृषि श्रमिकों में शिक्षा का व्यापक प्रसार किया जाए क्योंकि शिक्षित कृषि श्रमिक ही स्वयं को भूपतियों के शोषण से बचा सकते हैं, उचित मजदूरी प्राप्त कर सकते हैं तथा देश के आर्थिक विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। ❑

लघुकथा

बरगद का दर्द

रामयतन प्रसाद यादव

किसी उजड़ते हुए जंगल में एक बहुत बड़ा दरख्त था जिसके कोटरों में हजारों पक्षियों का निवास था। चिलचिलाती धूप, कड़कती ठंडक, मूसलाधार बारिश और आंधी-तूफान जैसी आपदाओं के वक्त भी हजारों पक्षी परिवार बरगद की बाहों में चैन की वंशी बजाते गाते और चहकते रहते थे। बरगद की बाहों में उन्हें किसी बात की चिंता न थी। भूख लगती तो बरगद के पकोहे खा लेते और प्यास लगने पर झरने का स्वच्छ, शीतल जल पीकर तृप्त हो जाते। उन्हें बरगद की गोद में किसी बात की चिंता न थी। थके-मांदे मुसाफिरों और जानवरों को भी उस दरख्त की छाया में सुकून हासिल होता था।

लेकिन एक दिन अचानक पक्षी परिवारों के बीच कोहराम मच गया। सभी रोने-बिलखने और इधर-उधर भागने लगे। कारण यह था कि ट्रक पर सवार होकर शहर से आए हुए कुछ लोग बरगद के नीचे खड़े होकर उसे काटने की योजना बना रहे थे और कुछ देर के बाद उस दरख्त को काटा भी जाने लगा। मशीनी आरे की आवाज से पक्षियों का दिल दहल उठा। उनकी आंखों से आंसू बहने लगे। वे सभी एक जगह जमा होकर घृणा भरी निगाहों से पेड़ काट रहे आदमियों की तरफ देख रहे थे। फिर उन्होंने एक स्वर में बरगद से पूछा, ''बाबा, यह आदमजात आपको क्यों काट रहे हैं? आपने इनका क्या बिगाड़ा है....?''

बरगद ने आंखों में आंसू भरकर आशीर्वादी मुद्रा में पक्षियों की तरफ देखा और कहा, ''मेरे बच्चो! ये आदमजात हमें नहीं बल्कि अंधे स्वार्थ के वशीभूत होकर अपनी आने वाली नस्लों की जिंदगी नष्ट कर रहे हैं....।'' कुछ पल रुककर उसने दूर-दूर तक फैले रेगिस्तान की तरफ देखते हुए पुनः कहा, ''मेरे बच्चो! उधर देखो, उस तपते हुए रेगिस्तान में धरती को निगल जाने की ताकत है, लेकिन सदियों से उसे रोककर मैं आदमजात की हिफाजत करता रहा हूं....और आज वही आदमजात....।'' इतना कहते-कहते दरख्त धराशायी हो गया।

पक्षियों का मधुर कलरव हृदय विदारक रुदन में तबदील हो गया। ❑

करेला : कड़वा जरूर, लेकिन गुणों से भरपूर

मीना

इन दिनों सब्जी मंडी में करेले काफी तादाद में आ रहे हैं। हालांकि करेला स्वाद में कड़वापन लिए होता है। मगर इसके गुणों को देखते हुए इसका कड़वापन कोई दुर्गण नहीं रह जाता। करेला औषधीय गुणों से भरपूर सब्जी है। करेले के नियमित उपयोग से कोढ़, पीलिया, अरुचि, कफ, वायु-दोष, रक्त-विकार, पित, बुखार आदि रोगों में लाभ होता है। आयुर्वेद में भी करेले के गुणों को विस्तार से बताया गया है। आयुर्वेद में आगे कहा गया है कि करेले का रस कटु जठाराग्नि को प्रदीप्त करने वाला तथा परम कफ-नाशक है।

करेले में फास्फोरस, प्रोटीन, आयरन, कैल्शियम, विटामिन बी तथा सी आदि स्वास्थ्यकारी तत्व पाए जाते हैं।

करेला प्राकृतिक रक्त-शोधक का कार्य बखूबी करता है। इसलिए यह चर्म-रोगों में काफी उपयोगी है। यदि फोड़े-फुंसियों, दाद, खुजली आदि त्वचा रोगों में संबंधित स्थान पर करेले का रस नियमित रूप से लगाया जाए, तो काफी लाभ होता है।

करेले के पत्तों का रस गर्म पानी के साथ पीने से उदर-विकार दूर होते हैं और पेट के कृमि भी नष्ट हो जाते हैं।

आजकल मधुमेह (डायबीटिज) की बीमारी आम हो गई है। इस रोग में करेले का अधिकाधिक सेवन लाभप्रद है। रोगी यदि रोजाना करेले का पचास ग्राम रस पंद्रह-बीस ग्राम शहद के साथ ले, तो मधुमेह में काफी फायदा होगा। मधुमेह के रोगियों को करेले के पत्तों का रस भी नियमित रूप से लेना चाहिए।

यदि आपको जोड़ों के दर्द की शिकायत है तो करेला आपके लिए रामबाण औषधि का कार्य करेगा। आपको बस इतना करना है कि नियमित रूप से प्रात:काल हल्की-सी काली मिर्च के साथ घी में भूनकर करेले का सेवन करें।

करेले के पत्तों से ढाई तोले रस में थोड़ी सी हींग मिलाकर पीने से पेशाब साफ हो जाता है और अन्य मूत्र विकार दूर होते हैं।

करेले के पत्तों के रस में काली मिर्च पीसकर मिलाइए। यह लेप आंखों के बाहरी भाग पर लगाने से रतौंधी (आंखों की एक खतरनाक बीमारी) में आशातीत लाभ होगा।

यदि आग से जल गए हैं तो जलने की वजह से पैदा हुए घावों पर ताजा करेला पीसकर बांधना चाहिए। ऐसा करने से तात्कालिक जलन शांत होगी और घाव भी शीघ्र ही भर जाएंगे।

यदि आपको पैरों में जलन तथा जोड़ों में दर्द की शिकायत है, तो करेले के पत्तों का रस मलकर लगाने से दर्द और जलन में काफी राहत महसूस होगी।

पथरी की शिकायत होने पर करेले का रस सवेरे खाली पेट पीएं। ऐसा रोजाना करने से पथरी गल-गलकर निकल जाएगी और आराम होगा।

कब्ज में भी करेला उपयोगी साबित हुआ है। रोजाना करेले की सब्जी खाने और इसका रस पीने से आप काफी लाभ महसूस करेंगे।

करेले के अथवा उसके पत्तों के रस में एक चम्मच शक्कर मिलाकर दिन में दो बार लेने से बवासीर ठीक हो जाती है।

पशुओं को अफारा आने पर करेलों को पानी में उबाल कर और नमक मिलाकर उनका रस निकालकर नाल से दे दें। अफारा फौरन उतर जाएगा।

यदि पेट में कीड़ों की समस्या है तो करेले का रस दिन में तीन बार पीएं। इसके साथ परहेज यह है कि इस दौरान तले, गले और गर्म पदार्थों का सेवन न करें। ❑

डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एल) 12057/98
आई.एस.एस.एन. 0971-8451
पूर्व भुगतान के बिना डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में डाक में डालने की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

P&T Regd. No. D (DL) 12057/98
ISSN 0971-8451
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

आज ही मंगाएं

भारत
1998

पृष्ठ संख्या : 950 मूल्य : 220 रुपये

भारत सरकार का प्रामाणिक वार्षिक संदर्भ ग्रंथ

* पुस्तकालयों * पत्रकारों * अनुसंधानकर्ताओं * छात्रों और * प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वालों के लिए एक आवश्यक ग्रंथ।

अपनी प्रति स्थानीय एजेंट से खरीदें अथवा निम्नलिखित पते पर मनीआर्डर/ड्राफ्ट/ पोस्टल आर्डर भेजकर मंगाएं।

व्यापार व्यवस्थापक

प्रकाशन विभाग, *सूचना और प्रसारण मंत्रालय,*

पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001

निम्नलिखित स्थानों पर भी उपलब्ध है :

प्रकाशन विभाग के बिक्री केंद्र :

पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली; सुपर बाजार कनाट प्लेस, नई दिल्ली; हाल नं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली; राजाजी भवन, चेन्नई; 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता; बिहार राज्य सहकारिता बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ पटना; गवर्नमेंट प्रेस के निकट, तिरुअनंतपुरम; 27/6, राम मोहन राय मार्ग, लखनऊ; कामर्स हाउस, करीम भाई रोड, बालार्ड पायर, मुंबई; राज्य पुरातत्व संग्रहालय बिल्डिंग पब्लिक गार्डन, हैदराबाद; प्रथम तल, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला बंगलौर, सी.जी.ओ. कम्पलेक्स, 'ए' विंग, ए.बी रोड, इंदौर; 80 मालवीय नगर, भोपाल; के-21, नंद निकेतन, मालवीय मार्ग, 'सी' स्कीम, जयपुर।

श्रीमती सुरेन्द्र कौर, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और मुद्रित। मुद्रक तारा आर्ट प्रेस, बी-4 हंस भवन, नई दिल्ली-110002. प्रकाशन स्थान : 655, 'ए' विंग, निर्माण भवन, नई दिल्ली-110001. सम्पादक : बलदेव सिंह मदान